पुस्तक मिलने का पता मैनेजर आर्य्यावर्त्त प्रेस, भवानीपुर ।

॥ ओ३म् ॥

स्वर्ग में महासभा ।

ब्रह्मादि महर्षियों तथा श्रीकृष्णादि महात्माओं पर जो
झूठे दोष लगाये गये हैं, उनके निवारणार्थ तथा
धर्मानुरागियों के हितार्थ बाबू महावीर प्रसाद जी
ने श्रीयुत पण्डित रुद्रदत्त शर्म्मा से सम्पादित
करा प्रकाशित कराया था।
स्थान भवानीपुर।

आर्य्यसम्वत्सर १९[illegible]००२ स[illegible] १९५८ सन १९०२ ई०

CALCUTTA:
PRINTED AND PUBLISHED FOR THE PROPRIETOR
BY GORA CHAND CHAKRBUTTY AT THE
ARYAVARTTA PRESS, BHOWANIPORE.

1902.

॥ ओ३म् ॥

स्वर्ग में महासभा।

कालचक्र के पहिये को घुमाते हुए सूर्य्यनारायण ज्योंही उत्तरायण हुए त्यों ही देवलोक में घोर घबराहट मच गई। इस घबराहट के कारणों को लिखा जाय तो एक करोड़ श्लोकों का महा महा महाभारत बन जाय। तौभी पाठकों के सन्तोषार्थ संक्षेप से दो चार कारणों का वर्णन करना अत्यन्त आवश्यक जान पड़ता है।

इस घबराहट का खास कारण तो यह था, कि मिस्टर टक्कर ने फक्कर बन के जब से मुक्ति सेना बनाई, और वारक्राई (War cry) समाचारपत्र निकाला, तब से देवता लोगों को हर समय यही सन्देह और भय बना रहता है, कि न मालूम किस समय टक्करासुर के सैनिक स्वर्ग में सीढ़ी लगा के चढ़ आवें, और हमलोगों को मार के स्वर्ग से निकाल दें। गत २४ दिसम्बर १८९६ को फ्री मैशन के देवता ने स्वर्ग में जाके देवतों से प्रार्थना की, कि महाराज! मुझे क्षष्टानों ने मार के भगा दिया, मर्त्तलोक से मेरी उपासना को ईसाई उठाना चाहते हैं, आप सब कौमपरवर हैं, लिहाज़ा मेरी रक्षा करना आपलोगों का फर्ज़ है। फ्री मैशन चर्च के देवता की प्रार्थना को सुन के देवराज इन्द्र को ध्यान आया कि सब्जेक्ट कमीटी में जो पबलिक मीटिङ्ग वा महासभा करने का प्रस्ताव हुआ था, उसको अब करना चाहिये। देवराज इन्द्र इस विचार में बैठेही थे कि इतने में असंख्य पितरों ने आके देवदर्बार को घेर लिया, और चिल्ला के दुहाई देने लगे। इनकी चिल्लाहट को सुनके महाराज इन्द्र

भी घबराये, और अपने द्वारपाल से बोले कि इन सब को खामोश करके दर्बार में हाज़िर करो; हुक्म पातेही द्वारपाल सब को बुला लाया।

उन सब ने हाथ जोड़ के बिनय करी कि महाराज! हमलोग बड़े कष्ट में हैं। हम में से अधिक लोग अरब और इंग्लिस्तान के रहने वाले हैं, हमलोगों ने जितने सुकर्म्म किये थे उनमें से किसी का भी हमको फल नहीं मिला, और न हमारे पुत्र हमारा श्राद्धही करते हैं, जो हमको यहां खाने को मिले, लिहाजा हम सब भूखे मरे जाते हैं। अगर हमको पहिले से यह अन्धेर मालूम होता तो हम कभी सुकर्म्म न करते।

इन लोगों की बातकी आर्य्यावर्त्तीय पितरों ने भी ताईद की, और कहा कि बेशक यह लोग सत्य कहते हैं, अगर हमलोग जानते की सुकर्म्म और कुकर्म्म करने वालों को स्वर्ग में एकही स्थान मिलता है, तो हमलोग क्यों सुकर्म्म करते? देखिये जिस महिषासुर ने बड़े बड़े महर्षियों को सताया आप सब लोगों को युद्ध में घताया वही आज मुक्त पदवी पाके आनन्द भोग रहा है। इसके अतिरिक्त रावण और बाणादि अनेक महा अन्यायी राक्षस भी मुक्त हो चैन उड़ा रहे हैं. तब अन्य लोगों का सुकर्म्म करना झख मारना नहीं तो क्या है? महाराज! आप इस लवड़धौंधौं को मिटाइये नहीं तो जगत् में अन्धेर हो जायगा।

इन लोगों की अर्ज पूरी नहीं हुई थी, कि इतने में देवतों के एक दल ने आके इन्द्र महाराज से प्रार्थना की, कि हे देवराज! आजकल हमलोग भूखे मर रहे हैं, कहीं पर यज्ञ नहीं होता जो हमको भाग मिले, यज्ञ के विना उत्तम धुआं नहीं होता, धुआं ही नहीं तो बादर काहे के बने, बस बादरों के अभाव से वर्षा का अभाव हो रहा है। अवर्षण से संसार की यह दशा है, कि शाकम्भरीदेवी (मार्कण्डेय पुराण में लिखा है कि शाकम्भरी देवी ने १२

वर्ष तक देवतों को शाक खिला के जिलाई थी) की तर्कारी भी सूख गई, जो हमारे भक्त पहिले बर्फी और पेड़ों का भोग लगाया करते थे, अब उनको बाजरे की रोटी भी नहीं मिलती है।

इन लोगों की ताईद करते हुए काशीपति विश्वनाथ बोल उठे महाराज! बेशक आजकल देवतों को बड़ा कष्ट है, मेरीही दशा देखिये ना; मैं जो एक बार भङ्ग की तरङ्ग में यवन के डर से ज्ञान वापी कुएं में जा गिरा था, तो काशी के पंडों ने मेरी एवज़ में एक क़ायम मक़ाम (Officiating) विश्वनाथ बना लिया, मगर आश्चर्य्य यह है, कि अबतक भी कोई मेरा भक्त मुझे कुएं से नहीं निकालता है, हालां कि मेरा मग़ज़ चावल और सड़े पानी की बदबू से सड़ा जाता है, और मैं कुएं में पड़ा महाकष्ट भोग रहा हूं। और मेरा क़ायम मक़ाम मुस्तकिल (Permanent) विश्वनाथ बन के गुलछर्रे उड़ा रहा है। हे देवराज ! यदि आप हमलोगों के कष्ट को दूर न करेंगे तो हम सब मिल के बलि को देवराज बना लेंगे।

इन सब की बातों को सुनके देवराज इन्द्र ने मुस्करा के कहा, हां भाई अब तो तुम्हारी नज़र बढ़ गई है, अब आपलोग अमेरिका की ओर क्यों न देखेंगे ! मगर याद रखिये, कि अब वहां बलि का बल नहीं है, अब तो पाताल में रिपब्लिकन गवर्नमेन्ट (प्रजातन्त्र) हो गई है, अगर स्वर्ग में भी वही साम्यवाद आपलोग चलावेंगे, तो हम भी मर्त्यलोक के मनुष्यों को महाकांग्रेस कराके, आपलोगों की भक्ति को नेस्त नाबूद कर देंगे। स्मरण रखिये कि जैसी उन्नति हम आपलोगों की कर सक्ते हैं, वैसी उन्नति विदेशीय राजा बलि नहीं कर सक्ता है; मैं अभी सब संसार के देवतों की महा सभा करके आपलोगों के दुःख दूर करने के उपायों को बड़े यत्न से करूंगा।

इतना कह के महाराज इन्द्र ने समस्त दिग्पाल और सूर्य्य चन्द्रमा आदि प्रधान प्रधान देवतों को सम्मति करने के वास्ते बुलाया, वह लोग पलक भरमें देवराज की अमरावती पुरी में आ बिराजे।

प्रथम सब की सम्मति से एक मनेजिङ्ग कमीटी क़ायम की गई, चूंकि इस कमीटी का ख़ास काम नोटिस देना व सभा के वास्ते स्थानादि का प्रबन्ध करना था, इसकारण श्री सूर्य्यनारायण इसके सभापति, चन्द्रमा उपसभापति और अग्निदेव सेक्रेटरी नियत किये गये, प्रथम मनेजिङ्ग कमीटी के मेम्बरों की राय हुई, कि श्री विघ्न विनायक लम्बोदर से विज्ञापन लिखा के बितीर्ण किये जायं, परन्तु श्रीशुक्राचार्य्य ने कहा, कि अब वह ज़माना नहीं है, जब हाथसे लिख लिख कर दिशावरों को चिठ्ठी भेजी जाती थीं; अबतो इन्‌लाइटेन्ड रोशनी का ज़माना है, इसलिये किसी प्रेसमें दो चार अरब नोटिस छपा के बांट देने चाहिये; आजकल फीमेलएजूकेशन (स्त्री शिक्षा) तरक्की पर है, लिहाज़ा सरस्वती देवी पल मात्र में नोटिस कम्पोज़ कर के छपा सक्ती हैं। इन सब की बातों को सुनके, भुवन भास्कर भगवान् बोले कि नोटिस बांटने वा छपाने की कोई ज़रूरत नहीं है, क्योंकि इन्टेलीजेन्स डिपार्टमेन्ट (समाचार बिभाग) ने इतनी उन्नति कर ली है, कि पलक मारते सारे संसार में सभा के समाचार पहुंच जायंगे, मैं हेलोग्राफ़ (सूर्य्य की किरणों के द्वारा जो समाचार भेजे जाते हैं) के द्वारा मेरे मित्र शीतरश्मि (चन्द्रमा) नाइट सिग-नेल के द्वारा और अग्निदेवजी महाराज तड़िद्‌ग्राम (तार) के द्वारा पलअ भर में सर्वत्र समाचार पहुंचा देंगे, आपलोग विज्ञापन बांटने की चिन्ता को छोड़ के दूसरे प्रबन्ध कीजिये। मनेजिङ्ग कमोटी की सम्मति से अमरावती के टौन हाल में बसन्त पंचमी को सभा का होना स्थिर हुआ, सभा में अधिक भीड होने की सम्भवना थी, इस कारण इन्सपेक्टर जनरल आफ़ डिवाइन् हास्पिटेलस् (सिविल ऐन्ड मिलेटरी) (अश्विनी कुमारों को) बुला के आज्ञा दी गई, कि आप अपनी डिसपेन्सरी के सहित सभा मण्डप के दाहिनी ओर हर समय हाज़िर रहिये, क्योंकि आजकल बिउबनिकप्लेग (महामारी) का अधिक भय है, इसके अतिरिक्त डिवाइनमेलसर्विस के सुपेरिन्टेन्डेन्ट

वायु देव को आज्ञा मिली, कि तुम हर समय यहां हाज़िर रहो, और जिस सभासद का कहीं से कोई पत्र आवे, फ़ौरन उसे उसके पास पहुंचा दो।

इन प्रबन्धों को करने के पश्चात् मनेजिङ्ग कमीटी ने विदेशी देवतों के वास्ते टौन हाल के हाते में एक होटल तयार कराया। और योरोपियन देवतों के वास्ते भोजन पकाने के निमित्त मातंगिनी देवी को उच्छिष्ट चाण्डालनी के सहित सम्पूर्ण सामग्री देके नियत कर दिया; बंगदेशीय देवतों के वास्ते मत्स्य प्रिया बगला मुखी नियुक्त की गई, यवनदेशी और अफ्रीका के देवतों के खान पान का प्रबन्ध करने को कज्जलगिरिनिभा काली जी नियत की गई, ऐसही चीन, जापान और मलाया आदि द्वीपों के देवतों के खान पान का प्रबन्ध करने को वागीश्वरी और पद्मा देवी को (यह दोनों देवी बौद्ध सम्प्रदाय में मानी जाती हैं,) आदेश मिला। मनेजिङ्ग कमीटी ने इस प्रकार से सब के खान पान का प्रबन्ध कर के, टौन हाल के द्वार पर (Welcome to Holy Gods) सुन्दर अक्षरों में लिख के लगवा दिया, और द्वार पालों को आज्ञा दे दी कि जो कोई सभा में विघ्न डालने के अभिप्राय से कुछ काम करे, उसको जहन्नुमरसीद करो, और जो सीधे स्वभाव से सभा में जाना चाहे उसे हर्गिज़ मत रोको।

प्रबन्ध करतेही करते बसन्तपञ्चमी का दिन आ गया, उस प्रातःकालही से सभा मण्डप में देवतों का आना आरम्भ हुआ, सबलोग अपने अपने ब्लाक में जा बैठे, ए० ब्लाक में आरिजिनेल (असली) देवतों के वास्ते कुर्सीयों की कतार लगी हुई थी, और उस ही के बीच में सभापति के वास्ते एक रत्न जटित सिंहासन बिछा हुआ था, इसकी दाहिनी ओर बी० ब्लाक था, इसमें महर्षि मण्डल तथा वेदों के मानने वाले मुक्त जीवों के वास्ते कुर्सियां बिछी हुई थीं; बाईं ओर सी० ब्लाक में यूरोप तथा अरब आदि देशों के देवता

तथा पैग़म्बर लोग विद्यमान थे, और डी० ब्लाक में मोडर्न (नये जमाने के) ऋषि तथा धर्म्माचार्य्य लोग विराजमान थे।

देवियों को आसन देने के समय प्रबन्ध कर्त्ताओं में वैमनस्य हो गया क्योंकि कईएक की सम्मती थी कि देवियों को देवतों के बीचमें आसन न मिलना चाहिये, क्योंकि सनातन धर्म्म वाले स्त्रियों को सभा में बिठलाना पाप समझते हैं। दूसरे कहते थे कि जिस दुर्गा देवी ने महिषासुर को और शुम्भ निशुम्भ आदि दैत्यों को युद्ध में मारा, वह अब किससे परदा करेंगी, खैर अन्त में यह स्थिर हुआ, कि ए० ब्लाक के पासही एक फोमिल क्वार्टर बनाया जाय, और सब देवी उसही में बैठ के सभा को देखें और आवश्यकतानुसार सम्मति भी दें।

इसके अनन्तर प्रबन्ध कर्त्ताओं ने जो डी० ब्लाक के ओर देखा तो वहां पूरी अशांति पाई, कुछ लोग आगे बैठने के वास्ते आपस में झगड़ा कर रहे थे, इस कोलाहल को सुनके मनेजिङ्ग कमीटी के सभापति ने सबको यथा स्थान बिठला के शान्ति की। जब सबलोग यथा स्थान बैठ गये, और सभा में शान्ति स्थापित हो गई, तब रिसेप्शन कमीटी वा अभ्यर्थना सभा के सभापति कुमार जयन्त ने इस प्रकार से अपना व्याख्यान आरम्भ किया।—

व्याख्यान।

देव, देवी, ऋषि, मुल्ला और धर्म्माचार्य्यवृन्द!

मैं आपलोगों को धन्यवाद देने योग्य नहीं हूं, क्योंकि कलियुगी रामायण में मुझे कव्वा लिख दिया है, भला सोचिये तो सही, कि मैं अपने देव स्वरूप को त्याग कर कव्वा क्यों बनता? प्रथम तो योगी के बिना किसी को यह शक्तिही ईश्वर ने नहीं दी, कि अपने शरीर को बिना मृत्यु के छोड़ के दूसरा शरीर धारण करे, यदि मुझे योगी ही माना जाय तो क्या योगी इतना भी नहीं समझ सक्ता कि श्रीरामचन्द्रजी की धर्म्मपत्नी सती साध्वी पतिव्रता सीताजी परपुरुष से प्रीति नहीं कर सक्ती हैं, मैं झख मारने क्यों जाऊं, फिर उसही

रामायण में यह भी लिखा है, कि महाराज रामचन्द्रजी ने मेरी एक आंख फोड़ डाली, परन्तु देखिये मेरे दोनों नेत्रकमल से खिले हुये हैं, यदि कहिये कि कव्वे रूप की आंख फोड़ दी थी, और इसही कारण अब तक भी सब कव्वे काणे होते हैं, तो यह महा अन्याय है, कि अपराध करूं मैं, आंख फोड़ी जाय कव्वों को, इसके अतिरिक्त श्रीरामचन्द्रजी के और मेरे जन्म से भी पूर्व्व काकभुशुण्ड का होना पुराणों में लिखा है, परन्तु उसके भी दो नेत्र नहीं लिखे अस्तु—मैं अपनी अधिक सफाई देना नहीं चाहता हूं, क्योंकि मर्त्यलोक के मनुष्यों ने कुछ मुझेही दोष नहीं लगाया है, बरन भगवान विष्णु को भी दोषों का भण्डार बना दिया है, देवतों की दुर्दशा को दूर करने के वास्ते जो आपलोग लाखों कोस से यहां आये, और अमरावती के टौनहाल को सुशोभित किया, इस कारण मैं आपलोगों को अरबों धन्यवाद देता हूं।

देववृन्द! पुराणों को मानने वालों ने स्वर्ग को थियेटर, हमलोगों को नगाड़ची और देवङ्गनाओं को नटनी समझ रक्खा है, क्योंकि अपने देश के छोटे छोटे आनन्दोत्सव में लिख दिया है, कि "देवा-दुन्दुभयो नेदुर्ननृतुश्चाप्सरोगणाः (अथवा) अवादयन्तः पटहान् पुष्प-वृष्टि सुचोदिवि" इनके अलावा दीन इसलामियां वालों के ख़याल से तो बिहिश्त भी हूरों का बाज़ार है। इन सब लवड़धोंधों को दूर करने के वास्ते जो आपलोग आज इस टौन हाल में इकट्ठे हुये हैं, इस परिश्रम के वास्ते मैं आपलोगों को रिसेप्शन कमीटी की ओर से धन्यवाद देता हूं।

इस स्पीच के समाप्त होतेही महाराज कुबेर ने प्रस्ताव किया, कि आज की जनरल कमीटी में भगवान् विष्णु सभापति बनाये जायं, यद्यपि इसका अनुमोदन अनेक लोगों ने किया, परन्तु विष्णु भगवान् ने यह कहके इसे अनङ्गीकार किया, कि हम तो आजकल किसी काम केही नहीं रहे हैं, जब से शङ्कराचार्य्य ने वेदों की जड़ काटने

को सेल्फ गवर्नमेन्ट चलाया, तब से छोटे छोटे बालक भी खुदखुदा बन गये, सृष्टि करने और वेद बनाने के समय हम एक ही स्वतन्त्र थे, पर सृष्टि का और वेदों का नाश करने को करोड़ों ब्रह्म बन गये हैं, अब तो हम केवल स्त्रियों की कसम खाने कोही रह गये हैं, और देखिये जो हमारे भक्त बनने का दम भरते हैं, वही हमको गाली देते हैं; "महावराहो गोविन्दः" (विष्णुसहस्रनाम) अर्थात् विष्णु बड़ा सुवर है, कहिये किसे गरज़ है जो आप का सभापति बन के गाली खाय!

विष्णु भगवान् की बात को सुनके भोलानाथ शङ्करजी हंसते २ खड़े हुये, और मुस्कुरा के कहने लगे कि गाली से क्यों घबड़ाते हो? १६१०८ पटरानी और मनोहारणी व्रज बनिताओं का रसास्वादन भी तो आप को ही कराया गया है, क्या कड़ुये २ थू और मीठे मीठे गप् की कहावत को चरितार्थ करना चाहते हो? रास करते वक्त तो छ महीने की रात कर दी, और कुछ भी न शर्माये, पर अब जरा देर को सभापति बनते आप की नानी मरती है, क्या गोपियों का यह गीत अच्छा लगता कि—

फणिफणार्पितन्ते पदाम्बुजम्। कृणुकुचेषुन स्वाकृच्छयम्॥

और प्रेमातुर भक्तों के मुख से महावराह शब्द को सुन के कान कटे पड़ते हैं,। कैलासवासी शम्भु की बात को सुनके सरस्वती देवी के पिता श्री ब्रह्माजी खड़े हो के बोले, चूंकि विष्णु के दोषों पर इस सभा में विचार किया जायगा, लिहाज़ा विष्णु को सभापति बनाना मुनासिब नहीं है, मेरी राय नाकिस में आज की सभा में भी देवराज इन्द्रही सभापति के आसन को ग्रहण करें।

अनेक वादानुवाद तथा अनुमोदन प्रमोदन होने के पश्चात्, देवराज इन्द्र ने सभापति का आसन ग्रहण किया, जिस समय इन्द्र व्याख्यान देने को खड़े हुए, उस समय चियर्स और करतालों की ध्वनि से टौनहाल गूंज उठा।

सभापति का व्याख्यान।

देववृन्द! आपलोगों ने जो मुझे इस महती देवसभा का प्रधान बनाया, यह आपलोगों ने मेरे आफिशियल रेंक का मान्य बढ़ा के अपनी नियमवर्त्तिता का अपूर्व परिचय दिया है। इस महती सभा के महाधिवेशन का उद्देश्य यह है, कि मर्त्यलोक के निवासियों ने जो देवता लोगों पर सहस्रों दोष लगाये हैं, और धोखा घडी लगा रखी है; इससे हमलोगों का ही अपमान नहीं होता है, वरन परम कृपालु परमेश्वर का भी पूरा अपमान होता है। मेरे तो पूरे परिवार कोही पुराण बनाने वालों ने चोर और व्यभिचारी लिख दिया है, नृसिंहपुराण के २८ अध्याय में मेरे पुत्र जयन्तकुमार को लिखा है, कि राजा शन्तनु ने एक वृन्दावन बसा के जो अत्यन्त मनोहर बाग बनाया था, उसके फूलों को मेरा पुत्र चुरा लाता था, एक दिन माली ने मेरे पुत्र का फूल चुराते देखा, और नृसिंह की स्वप्न प्राप्त आज्ञा से दीवारों पर नृसिंह का निर्माल्य छिडक दिया, उसके लांघने से जयन्तकुमार ऐसा शक्तिहीन हो गया कि वह रथ पर न चढ सका, तब सारथी के उपदेश से वृन्दावन में १२ वर्ष रहा, और ब्राह्मणों का उच्छिष्ट बटोरता रहा, तब उसके शरीर में शक्ति आई। भला इस कथा के बनाने वाले से कोई पूछे कि जब यवनों ने भारत पर आक्रमण किया, और देवमन्दिरों को तोडा, नृसिंह की अनेक मूर्त्तियों को तोड के फेक दिया, तब क्या नृसिंह का निर्माल्य नहीं रहा था? जो भारत की सीमापर छिडक देते, और उसको लांघने से सब यवन शक्तीहीन हो जाते। इसके अतिरिक्त उसही नृसिंहपुराण की ४२ अध्याय में मुझे व्यभिचारी लिखा है। जब हिरण्यकशिपु तपश्चर्य्या करने गया था, (तब इन्द्र उसकी गर्भवती स्त्री को उठा के ले गया, और उससे व्यभिचार करना चाहा, तब नारद ने इन्द्र को समझाया, और कहा कि यह गर्भवती है, इसके उदर में परम भागवत है,) क्या मैं ऐसा अज्ञानी था कि इतना भी न

समझता कि यह गर्भवती है, खैर! यह तो कुछ बड़ी निन्दा की नहीं है, मुझ से बढ़ के विष्णु को लूलू बनाया है; एक जगह तो लिखा है कि सब देवतों के कहने से भृगु ऋषि ने विष्णु के वक्षस्थल में लात मारी, परन्तु विष्णु भगवान् की ऐसी शान्ति बढ़ी कि भृगु के पद को दबाने लगे, और कहने लगे कि आप के कमल सम कोमल पदों में मेरे कठोर वक्षस्थल की बड़ी चोट लगी होगी। दूसरी जगह (भविष्यपुराण ५६ अध्याय) लिखा है, कि विष्णु महाराज ने भृगु की स्त्री का चक्र से सिर काट डाला; कहिये तो उस समय वह शान्ति विष्णु की कहां को उड़ गई थी? जो अवध्य ब्राह्मणी को भी मार डाला, और इस ही का यह फल मिला कि अब विष्णु को बराबर अवतार लेना पड़ता है। मैं सत्य कहता हूं, कि जब से ऐसी ऐसी फाल्सरिपोर्ट मेरे आफिस में आने लगी, तब से मेरा दफ़र भी गन्दा हो गया; मैं सत्य कहता हूं, कि मुझे अब इन रिपोर्टों पर तनिक भी विश्वास नहीं रहा है, जो दान धर्म दानपात्र के उपकारार्थ था वह अब दिखाने मात्र रह गया है। गोदान केवल इस वास्ते था, कि वेदाभ्यासी ब्रह्मचारी के निशक्त शरीर में शक्ति का संचार हो, परन्तु स्वार्थान्ध लोगों ने सुवर्ण धेनु होरे के दांत लगा के (भविष्य पु० उत्तरार्द्ध १३७ अध्याय भवि० उ० १३८ अध्याय भवि० उ० १६० अध्याय) दान करना लिखा है। फिर उस से भी बढ़ के रत्नधेनु के दान का महात्म लिखा है, यदि वास्तव में सुवर्णधेनु को गौ ही समझा जाता है, तो उसके अङ्ग प्रत्यङ्ग को बेचकर खाना क्या महापाप नहीं है? और आश्चर्य सुनिये सुवर का भी दान करना लिखा है, अर्थात् तिल का सुवर बना के दान करें। इस दान का ऐसा महात्म लिखा है, कि इस दान का करने वाला अपने पुत्र कलत्र और मित्रों सहित स्वर्ग को चला जाय, सोचिये तो सही कि जो मनुष्य असली सुवर का दान करे, वह तो स्वर्ग से भी १० हाथ ऊंचा चला जाय।

तीर्थों के महात्मों का जहां वर्णन किया है, वहां तो हास्यरस का अन्तही कर दिया है। मैंने स्वयम् अपने नेत्रों से देखा है, कि प्रयागराज के महात्मा में लिखा है, कि जो मनुष्य ऊपर को पैर, और नीचे को सिर करके गंगा और यमुना के सङ्गम में आचमन करे, तो १०००० वर्ष तक स्वर्ग में सुख भोगे, (देखो कूर्मपुराण) महाशय वृन्द! मैं कहांतक कहूं इन फाल्स रिपर्टों में देवतों को ऐसी बुराई लिखी है, कि जिनको सुनते भी लज्जा आती है। गणेश को लम्बोदर और हाथी के सिर युक्त लिखके, फिर चुहे की सवारी लिख दी है, भला कहिये तो हाथी की सवारी चुहो क्यों कर हो सक्ती है?

प्रियदेववृन्द! आजकल जो भारतवासीयों पर स्वार्थी जनो ने टैक्स लगा रक्खे हैं, उनके विषय में मैं केवल एक दृष्टान्त देके अपने व्याख्यान को समाप्त करूंगा।

दृष्टान्त यह है, कि एक उजवक नगर नामक शहर में एक गवर गण्डसिंह नामक राजा राज्य करता था, वह राजा अपने नाम के अनुसार ऐसा मूर्ख और आलसी था, कि उसके अमले और प्यादे मन माने कार्य्य करते थे, परन्तु वह इतना भी नहीं जानता था कि मेरे राज में कितने ग्राम हैं, और उनका शासन कौन करता है। एकदिन उसकी राजधानी में किसी और राज्य का एक मनुष्य घीव बेचने को आया, परन्तु बाज़ार तक आते आते उसका सम्पूर्ण घीव कर अर्थात् ड्युटी (महसूल) में ही उड़ गया। कहीं राजा का कर, कहीं युवराज का कर, कहीं रानी का कर, कहीं राजमाता का कर, कहीं राजभ्राता का कर, कहीं मन्त्री और कहीं उपमन्त्री आदि का कर लेते जब उस व्यापारी के कपड़े तक भी सिपाहियों ने छीन लिये, तब वह रोताहुआ राजा के पास गया, परन्तु राजाने उसको धक्के देके निकलवा दिया, तब उसने समझा कि इस राज्य में अन्धेर है। अतएव मैं भी अपना कार्य्य सिद्ध कर सक्ता हूं, अब वह

भी श्मशान के पास जा बैठा, और जो मुर्दा उधर आवे उसकेही साथियों से कहै कि हमारा १।) रु० रानीजी के नाम से पहिले दे दो तब प्रेतकी क्रिया करो। जब उससे कोई पूछे कि तुम कौन हो? तबही वह कहदे कि हम रानी के साले हैं। अनेक वर्षों तक वह इसही रीती से कर लेता रहा, कुछ कालके अनन्तर गवरगण्डसिंह राजा की माता भी मरी, और स्वयम् राजा साहिब श्मशान में गये, और रानी के साले का नाम सुनके बहुत चकित हुए, जब १।) रु० उसका कर देके आगे बढ़े, तब अवसर पाके रानी साहिबा ने राजा से पूछा कि आपने किसको कर दिया, आप तो स्वयम् राजा हैं? राजा ने कहा कि यह रानी के साले का साले का कर दिया जाता है; रानी ने हंस के कहा कि स्त्रियों के साले नहीं होते हैं, आप समझ के बात कीजिये, राजा ने क्रोध के साथ उत्तर दिया कि इसबात को हम भी जानते हैं कि स्त्रियों के साले नहीं होते, परन्तु सनातन धर्म की रीति को मिटाना भी तो पाप है। देववृन्द! आजकल दान की भी यही दुर्दशा जगत् में हो रही है; कोई मृत्युञ्जय के जप से अमर होना चाहता है, कोई शनैश्चर और केतुके मुजावर को थोड़ासा लोहा वा तिल उड़द देके शरीर को अजर और निरोग बनाना चाहता है, कोई दो चार रु० की चान्दी देके अपने कर्म्मफल को उलङ्घन करके ईश्वर के नियम को भङ्ग करने की चेष्टा कर रहा है। मुक्ति के विषय में भी संसारी जनों की यही दशा है, जिन लोगों ने रिश्वत लेले के जन्म भर शराबखोरी और सोने चोरी की है, वह भी ईसाममोह की शरण में आके मुक्ति को मुंह बाय रहे हैं, ऐसेही खुदा की मखलूक को खाक में मिलाके और महम्मद के मोहताज बनके नजात पाने को उत्सुक हो रहे हैं, परन्तु परमेश्वर पर भी विश्वास नहीं है, और न सुकर्म्मों का भरोसा है, सुतराम् हमलोगों को अब ऐसा उद्योग करना चाहिये, जिससे जगत् में ईश्वर की भक्ति बढ़े, और मनुष्यों की श्रद्धा सत्य धर्म्म में बढ़े यदि अब भी हमलोग आलस्य करेंगे तो जगत् में नास्तिक और

आस्तिकाभासों का ही प्रभाव फैल जायगा, और सत्यधर्म्म नाममात्र को भी कहीं न रहेगा। मैं चाहता हूं कि आज की सभा में सबलोग स्वतन्त्र भाव से अपनी अपनी राय प्रकाशित करें।

सभापति के अवस्थानानन्तर देवर्षि नारद खड़े होके कहने लगे, चूंकि पुराण वालों ने मेरी असीम निन्दा की है, लिहाज़ा मैं प्रस्ताव करता हूं, कि पुराण (ब्रह्मवैवर्त्तादि) और मेरे नाम को कलङ्कित करनेवाले नारद पंचरात्रादि पुस्तक रद्दीखाने में फेंक दिये जायं। मैं शपथपूर्व्वक कहता हूं कि मैंने उन पुस्तकों को हर्गिज़ नहीं बनाया, भला मुझे क्या ज़रूरत थी कि मैं शठकोपी मत का प्रतिपादन और शैवादि मतों का खण्डन करता, न मैं रिश्वतखोर हूं, कि डोम आदि नीचों से कुछ धन लेके किसी आधुनिक पुस्तक अपनी मुहर कर देता। देवी भागवत के बनाने वाले ने जो आकरण मुझपर दोष लगाये हैं, वह अवश्यही आपलोगों ने सुने होंगे, (दे० भा० स्कन्ध ६ अ० २८, २९ व ३०) देखिये तो मुझे विष्णु ने कैसा धोखा दिया कि मेरे कपड़े लत्ते और बीन आदि लेके भाग गये, और मैं तलाव में स्नान करताही रह गया, जब मैं तलाव में से निकला तब स्त्री हो गया, फिर राजा तलध्वज से मेरा विवाह हुआ, देखिये तो क्या लालबुझक्कड़ी कथा है? देवी भागवत वाले को मेरी इतनही निन्दा करने से सन्तोष नहीं हुआ, वल्कि और भी अपूर्व्व कथा लिख डाली, उसमें तो मुझे बन्दरही बना दिया है, उसमें भी राजा सञ्जय की कन्या से मेरी विवाह करा दिया है, सोचिये तो सही कि मैं देवर्षि होके मानुषी से बिवाह क्यों करता?

देववृन्द! आपलोगों ने यह न सुना होगा कि हमारे सभापति देवराज भी एकबार बैल बने थे, (दे० भा० स्कन्ध ७ अ० ९) राजा ककुत्स्थ जब देवतों की प्रार्थना को सुन के दैत्यों से लड़ने को चले तब उन्हो ने कहा कि यदि इन्द्र हमारे वाहन बने तो हम दैत्यों से लड़ें, भला कहिये तो यह कितनी गाली हैं, कि जिन इन्द्र महाराज

को विष्णु आदि सबही राजा मानते हैं, उनकोही बैल लिख दिया, और मुझे तो पुराण वालों ने डाकका थैला और लड़ाई कराने का ओजार या चुगलखोर नियत कर दिया है, इस कारण मैं प्रस्ताव करता हूं कि पुराणों को मन्सूख कर दिया जाय।

इस प्रस्ताव का महर्षि पराशर ने अनुमोदन करते समय कहा कि बेशक पुराणों को मन्सूख कर देना चाहिये, क्योंकि इन पुराणों में हज़ारों बातें असम्भव लिखी है, मेरे परिवार की ओर मुझे जैसे वाहियात दोष पुराणवालों ने लगाये है, उनको मैं फिर वर्णन करूंगा; किन्तु अब एक ऐसी असम्भव कथा का वर्णन करता हूं जिसको सुनके आप सबलोग कई दिन तक हंसते रहेंगे। देवी भागवत सप्तम स्क० ८ अ० में लिखा है, कि राजा यौवनाश्व के १०० स्त्री थीं, परन्तु पुत्र किसी के नहीं था, इस से राजा को अत्यन्त चिन्ता रहती थी, इसही चिन्ता से व्याकुल होके राजा यौवनाश्व वन को चले गये, और वहां अनेक महर्षियों से कहा कि मेरे सन्तान नहीं है, अतएव आपलोग ऐसा यत्न कीजिये जिस से मेरे पुत्र हो। ऋषियों ने सन्तान प्राप्ति के वास्ते यज्ञ आरम्भ किया, ऋषियों ने जो मंत्रों से अभिमंत्रित करके जल से पूर्ण घट स्थापन किया था, वह इस अभिप्राय से था, कि जो नारी इस जल को पान करे उसको अवश्यही पुत्र हो. एकदिन रात्रि में राजा यौवनाश्व को बहुत प्यास लगी और उन्हों ने उसही यज्ञ कलश के जल को भूल से पी लिया, प्रातःकाल जब यज्ञकर्त्ता ब्राह्मणों ने कलश को खाली देखा तो राजा से पूछा कि वह जल कहां गया? तब राजा ने कहा कि वह जल मैंने पी लिया, इस बात को सुनके सब ने कहा कि तुम्हारे अवश्य पुत्र होगा, उस जल के प्रताप से राजा के गर्भ रहा, जब १० महीने पूरे हुए तब राजा यौवनाश्व के पेट को चीर के बालक निकाला गया, तब राजा के मंत्री ने कहा "कन्धाता" यह बालक किसका दूध पीयेगा? तबही देवराज इन्द्र ने आके कहा

कि "मान्धता" मेरा दूध पियेगा, इसही कारण उसका नाम मान्धाता रक्खा गया। देववृन्द! कहिये यह कथा क्या इस पहेली को चरितार्थ नहीं करती है कि—

सास कुवारी गर्भ पेट में, ननद पंजीरी खाय।

देखन वाला लड़का जन्मे, बांझिन दूध पिलाय॥

क्या यह जाफ़र जटल्ली का किस्सा नहीं है, भला विचारिये तो कि जिस गर्भाशय को मनुष्यों के पेट में ईश्वर ने ही नहीं रचा, उसको मंत्र के पानी ने क्योंकर बना दिया? यदि अभिमंत्रित पानी में यह शक्ति थी, तो राजा के स्तनों में दूध क्यों नहीं उत्पन्न कर दिया? वास्तव में इन लालबुझक्कड़ी कथाओं ने देव भाषा को और वेदों को बड़ाही बदनाम कर रक्खा है।

देववृन्द! इन पुराणों ने मेरे दादा वसिष्ठ से ही हमारे कुल को कलंकित करना प्रारम्भ किया है, लिखा है कि वशिष्ठ विश्वामित्र से लड़ने को बगुला बन गये, और लिखा है कि उन्होंने ऐसी ईर्षा करी कि अपने सौ पुत्रों को मरवा के तब विश्वामित्र को ब्रह्मर्षि कहा, फिर मेरा आत्मा के गर्भ में वेद पाठ करना लिखा है, क्या यह सम्भव है कि कोई मनुष्य गर्भ में मुख खोल सके? यदि गर्भ में मुख खुल जाय तो माता के गर्भ के मल बालक के मुख में भर जाय। ईश्वर ने गर्भस्थ बालक की पुष्टि के वास्ते यही नियम कर दिया है, कि बालक का मुख बन्द रहै, और नाभी की नाल के द्वारा माता के भक्षण किये अन्नादि का रस बालक के उदर में जाय। अस्तु अब एक और अद्भुत बात सुनिये कि मैं परम धर्म्मज्ञ और वेदज्ञ होके भी अविवाहित मत्स्यगन्धा पर मोहित हो गया, (देखो भागवत द्वितीय स्कन्ध द्वितीय अध्याय) और अपनी कामवृत्ति को दिनही में चरितार्थ करने को मैं कुहिरा उत्पन्न किया, आप सब जानते हैं कि कुहिर का नाम वेदों में भी लिखा है (मोहारेण प्रावृत्ता उक्थशासश्चरन्ति) इसके अतिरिक्त कुहिरा केवल उस बाष्प का नाम

है जो सूर्य्य की किरणों के द्वारा पृथ्वी से आकाश को जाती है, और जब से सूर्य्य तथा पृथिवी और जल बने हैं, तब सेही कुहिरा भी बना है, भला मैं उसको क्यों कर बनाता? फिर मेरे जन्म से भी पूर्व की अनेक कथाओं में भी कुहिरे का नाम आता है। जिस मत्स्यगन्धा से मेरे व्यभिचार की कथा लिखी है अब उसके जन्म का अद्भुत हाल सुनिये, जिसको सुन के आपलोगों की भी बुद्धि चकरा जायगी, देवी भागवत के प्रथम स्क० की प्रथम अध्याय में ही यह असम्भव कथा लिखी है, कि राजा उपरिचर की गिरिका नाम्नी भार्य्या जिस दिन ऋतुस्नाता थी, उसही दिन उपरिचर के पिता ने उन्हें शिकार खेलने के वास्ते बन को जाने की आज्ञा दी, राजा उपरिचर पिता की आज्ञा को परम धर्म्म समझ के बन को गये, परन्तु उनको अपनी ऋतुस्नाता भार्य्या का स्मरण रहा, इस कारण बन में उनका वीर्य्यस्खलित हुआ, राजा ने उस वीर्य्य को वटपत्र के दोने में रख के अपने एक बाज से कहा कि इस वीर्य्य को मेरी स्त्री के पास ले जाओ इससे अवश्य पुत्र उत्पन्न होगा; उपरिचर के बाज ने जब उस वीर्य्ययुक्त दोने को लेके आकाश मार्ग में गमन किया तब और बाजों ने समझा कि यह मांस लिये जाता है, तब और बाज उस से छीनने को आये, इस कारण बाजों में खूब युद्ध हुआ, वह दोना यमुना जी में गिर गया, उस दोने के वीर्य्य को एक मछरी (अद्रिका जो शाप से मछरी हो गई थी) खा गई, उसको एक मछुए ने पकड़ के चीरा तो उसके पेट से एक पुत्र और एक कन्या उत्पन्न हुए, मछुआ उन दोनों बालकों को राजा उपरिचर के पास ले गया, राजा उपरिचर ने लड़के को अपने रूप का देख के ले लिया, और कन्या को उसही मछुए को दे दिया, वही मछरी के पेट का लड़का राजामत्स्य हुआ, और कन्या व्यास की माता सत्यवती हुई, कहिये आपलोगों ने कभी ऐसी लालबुझक्कड़ी कथा सुनी थी? क्या अश्विनीकुमार और धन्वन्तरि का यह कहना

मिथ्या है कि बालक के अनेक प्रत्यङ्ग माता के रज से बनते हैं, यदि मान भी लिया जाय कि राजा उपरिचर का वीर्य्य अमोघ था, तो उसमें रज किसका और क्योंकर मिला? यदि कहा जाय कि मछरी का रज मिल गया होगा, तौभी अयुक्त है, क्योंकि जिनके अण्डे उत्पन्न होते हैं, उनके गर्भाशय में उस प्रकार का रज नहीं होता जैसे जरायुज स्त्रियों के होता है। इसके अतिरिक्त अण्डज स्त्रियों का गर्भाशय भी भिन्न रीति का होता है, वह मनुष्य के वा गधे के वीर्य्य को धारण नहीं कर सक्ती हैं। चिकित्सा शास्त्र में जो शरीर की रचना का वर्णन लिखा है, उसके देखने से स्पष्ट जान पड़ता है, कि मुख के मार्ग से गर्भ में गया वीर्य्य स्त्री के उस स्थान में नहीं पहुंच सक्ता, जहां पहुंचने से गर्भाधान होता है।

खैर हमारी तो दुर्दशा कीही थी, परन्तु व्यास की भी वह दुर्दशा की है, जिसको सुनके भद्रजन अशान्त हो जाते हैं। व्यास को दासी पुत्र लिखके, फिर लिखा है कि उन्हो ने १०० वर्ष शिव की आराधना करके पुत्र होने का बर पाया, परन्तु व्यास के घर स्त्री तो थीही नहीं जो पुत्र होता, एक दिन प्रातःकाल व्यास जी अग्निहोत्र करने के वास्ते अग्नि उत्पन्न करने को अरणी मथ रहे थे, उसही समय घृताची अप्सरा उधर आ निकली, उसे देखकर व्यास जी कामातुर हुए, परन्तु मन में व्याभिचार कर्म्म से डरे, और मन में कुछ चिन्ता करने लगे; व्यास मुनि को चिन्तातुर देखके घृताची भी घबडाई, और भय से शुकी (सुग्गी, तोती) बन के भागी, व्यास जी शुकी को देखकर अत्यन्त विस्मित हुए, और अप्सरा का ध्यान करने लगे, तब उनका वीर्य्य अरणी पर पतित हुआ, और उसहीसे शुकदेव (लकडी) से उत्पन्न होगये। देवहन्द! विचार (देवी भागवत प्रथम स्क० अध्याय १४) कर देखिये कि इस महा लालबुझक्कडी कथा में कैसी गप्प मारी है, कि लकडी सेही पुत्र उत्पन्न हो गया, एक और भी मुझे आश्चर्य्य है कि जिस श्रीमद्भागवत को पौराणिक

लोग पुराणों का शिरोमणि मानते हैं, उसमें शुकदेव का विवाहादि कुछ नहीं लिखा, परन्तु हज़ारों ब्राह्मण अपने को वशिष्ठ गोत्री बतलाते हैं, जब कि शुकदेव का वंशही नहीं चला और व्यास के भी दूसरी सन्तान नहीं थी, तब जगत् में वशिष्ठ का गोत्र कहां से आया? क्या बिना माता पिता के भी पुराण वाले किसी की उत्पत्ति कलियुग में मानने लगे हैं, परन्तु देवीभागवत में शुकदेव का विवाह पीवरी स्त्री के साथ लिखा है, और उससे कृष्ण, गौरप्रभ, भूरि तथा देवश्रुत नामक ४ पुत्रों की उत्पत्ति लिखी है, हम नहीं जानते कि पुराणों में परस्पर क्यों विरोध है? पुराण वालों ने हमारे वंशपर एक तो कृपा की है कि शुकदेव को कोई दोष नहीं लगाया, परन्तु "जब फंसे दादा तो किस गिन्ती में फिर पोते रहे" इस कहावत के अनुसार कुल भर कोही हमारे कलङ्कित बना दिया है।

सभ्यमहाशयों! मैंने आपलोगों को बहुत देर तक कष्ट दिया, परन्तु अब मैं केवल एक बात कहके अपने व्याख्यान को समाप्त करूंगा, आजकल के सन्यासी अपनी गुरु परम्परा में कहते हैं।

नारायणम् पद्मभवम् वशिष्ठम्, शक्तिंचतत्पुत्रपराशरंच।
व्यासशुकङ्गौडपदम्महान्तम्, गोविन्दयोगीन्द्रमथास्यशिष्यम्॥
श्रीशङ्कराचार्य्य मथास्यपद्मम्, पादंच हस्तामलकंचशिष्य।
न्तन्तोटकम्वार्त्तिक कारमन्या, नस्मद्गुरून्सन्ततमानतोस्मि॥

कि शुकदेव के शिष्य गौड़पादाचार्य्य गौड़पाद के शिष्य गोविन्दाचार्य्य गोविन्दाचार्य्य के शिष्य श्रीशङ्कराचार्य्य हुए, परन्तु इस सब के समय को मिलाने से यह बात सत्य नहीं मालूम होती, क्योंकि शुकदेव का स्वर्गवास पाण्डवों के जन्म से भी ५० पचासों वर्ष पूर्व्वही हो चुका था, और गोविन्दाचार्य्य तथा शङ्कराचार्य्य का जन्म बुद्धदेव के समय से सैकड़ों वर्ष पश्चात् हुआ था, तब गौड़पादाचार्य्य का शुकदेव के समय में होना क्योंकर सिद्ध हो सक्ता है? गौड़पादाचार्य्य की कलियुग में भी कई सहस्र वर्ष की अवस्था का होना वेदों से तो

विरुद्ध हुई है, किन्तु कलियुग के राज्य में पुराणों से भी निषिद्ध है।

महर्षि पराशर के क्रोध को बढ़ता हुआ देखकर श्रीमान् सभापति खड़े होके कहने लगे कि महर्षि पराशर! आपको यह अधिकार नहीं है, कि आप सन्यासियों के विषय में भी कुछ कहें, क्योंकि इस विषय में दत्तात्रेय तथा शङ्कराचार्य्य स्वयम् वर्णन करने को उपस्थित हैं। मेरी सम्मति में अब पञ्चदेवों में से किसी को अपनी सम्मति प्रकाशित करनी चाहिये।

सभापति की बात को सुनके स्वयम् भगवान् विष्णु हंसते हंसते खड़े हुए, और इसप्रकार से कहने लगे। सभ्यवृन्द! इस महती सभा में जो कुछ मैं कहूंगा, उसे आपलोग दिक् प्रदर्शन वा नमूना मात्र समझियेगा, क्योंकि संसार के कृतघ्न लोगों ने मुझे एक काठ का पुतला समझ रक्खा है, और मेरे नाम से स्वयम् विषय भोग करते लज्जित नहीं होते। भला यह कौन इन्साफ़ की बात है कि जिसको उपास्य देव वा देवी समझें उसको ही रास में नचावें, फिर मेरे नाम से मन्दिरों में वेश्याओं को नचावें और स्वयम् व्यभीचार करें, अपनी अपनी हठ को पूरी करने के वास्ते विषयी लोगों ने मुझे बदनाम कर रक्खा है, कोई कहता है कि विष्णु गोलोक में रहते हैं, और गोलोक में सिवाय विष्णु के सम्पूर्ण स्त्रियां रहती हैं, कोई कहता है कि विष्णु दैत्यों को मारने के वास्ते सदैव अवतार लिया करते हैं, जिन मनुष्यों को वह मेरा अवतार बतलाते हैं, उन महात्माओं के जीवन चरित्रों को सृष्टिक्रम विरुद्ध बातों से भर देते हैं। खैर अवतारों की कथाओं को मैं फिर कहूंगा, प्रथम अपनीही दुर्दशा को सुनाता हूं, सबही लोग मुझे मधुसूदन और कैटभारि कहते हैं, परन्तु मधुकैटभ के मारने के समय न मालूम मुझे किस किस का उपासक पुराणवालों ने बना दिया है। गणेशपुराण की १७ और १८ अध्याय में लिखा है, कि जब मैं मधु और कैटभ नामक दैतों से लड़ता लड़ता थक गया, और वह न मरे, तब मैंने गन्धर्व्वं का रूप धारण किया, मैंने

जो बन में आके बीन बजाई और गाया उससे शिव महाराज बड़े प्रसन्न हुए, और अपने दूत के द्वारा मुझे अपने पास बुलाया और मेरे गाने को सुनके बड़े प्रसन्न होके वर देने को तय्यार हुए, मुझसे तब मधुकैटभ की कथा को सुनके शिव महाराज बोले कि तुमने गणेशकी पूजा नहीं की थी, इससे ही तुम्हारी विजय नहीं हुई, अब मैं तुमको गणेश का मन्त्र बताता हूं, उसको जपने से गणेश तुमपर प्रसन्न होंगे और उससे ही तुमको विजय प्राप्त होगी।' शिव ने यह भी कहा कि गणेश के ७०००००० मन्त्र हैं, मैं उनमें से षडक्षर मंत्र तुमको उपदेश करता हूं; मैंने शिव से उन मंत्र को ग्रहण करके १०० वर्ष तक जपा, तब गणेशजी ने प्रत्यक्ष होके दर्शन दिये, देखिये तो यह गणेशजी और शिवजी कैसे धोखेबाज़ हैं, कि जब मेरे गीत सुनने को शिवजी ने मुझे अपने पास बुलाया था, उस समय गणेशजी वहीं मौजूद थे, परन्तु वहां पर उनसे वर न दिया गया, फिर जो गणेशजी मेरे ऊपर मेहर्बानी करने को १०० वर्ष के बाद आये थे, उनके रूप का तेज ३०००००० सूर्यों के समान लिखा है, भला विचारिये तो सही कि एक सूर्य्य के उत्ताप से तो जगत् भर उत्तप्त रहता है, परन्तु तीन करोड़ सूर्य्य के समान तेजवाले गणेश से मैं भी न जला, और न मधुकैटभ जले, गणेशपुराण में तो यह लिखा है, और मार्कण्डेय पुराण तथा देवीभागवत में लिखा है कि देवी की कृपा से मैंने मधु-कैटभ को मारा। हां एकबात तो मैं भूलही गया, जिन गणेशजी का मंत्र मुझे १०० वर्ष तक जपना पड़ा था, वा यों कहिये कि जिनकी उपासना से मुझे सिद्धि मिली थी, वह गणेशजी कौन हैं? देववृन्द! वह गणेशजी भी पार्वती के शरीर के मैल से उत्पन्न हुए थे, लिखा है कि एक समय पार्वतीजी महादेव से रुष्ट हो के दूसरे बन में चली गई थीं, उन्हो ने बन में जाके अपनी रक्षा के वास्ते अपने शरीर के मैल से एक मनुष्याकार पुतला बनाया, और उसे सजीव करके द्वार परबिठला दिया, जब महादेव अपने गणों के सहित पार्वती को

ढूंढ़ते हुये वहां आयें, और भीतर जाने लगी तब गणेश ने उनको रोका, इसकारण परस्पर घोर संग्राम हुआ, उस संग्राम में महादेव ने गणेश का सिर काट डाला, इसबात को देखकर पार्वतीजी बड़ी चिन्तायुक्त हुईं, और शिव महाराज से कहने लगीं कि इसको जिला दो अन्यथा मैं भी प्राण त्याग दूंगी, इस हठ को सुनके शिव महाराज ने अपने दूतों को इधर उधर भेज के गणेश के सिर को तलास कराया, परन्तु गणेश के सिर को प्रथमही देवता लोग उठा के ले गये थे, और चन्द्रलोक में रक्खा था; अतएव महादेव के दूत एक हाथी के बच्चे को और उसकी माता को अचेत सोया हुआ देख के उस बच्चे के सिर को काट लाये, शिव महाराज ने उसही हाथी के बच्चे के सिर को गणेश के कबन्ध पर रख दिया, और उसे जिला दिया। देखिये देववृन्द! कैसी शिल्प क्रिया है कि दूसरे के सिर को धड़ पर रख के छू मंतर किया और झप से वह जी गया, यदि कहा जाय कि शिव महाराज सर्वशक्तिमान् थे, तो क्यों नहीं बिना सिर केही गणेश को जिलाया?

ऐसी हास्यास्पद कथा कुछ गणेश केही विषय में नहीं लिखी बरन मुझे भी देवतों ने एक बार ऐसेही छू मंतर से जिलाया था, महाशय! इस बात को मैं पारसल की "सलेक्ट कमीटी" में बयान कर चुका हूं, अब एक बात और सुनिये, जिस गरुड़ जी को मेरा वाहन बताते हैं, उससेही मेरा घोर युद्ध भी लिख दिया है, यह कहानी एसी अद्भुत रिती से लिखी है, कि जिसको सुनतेही हंसी आती है, लिखा है कि कश्यप की स्त्री कद्रू (सर्पों की माता) और विनता (गरुड़ की माता) में एक दिन सूर्य्य के घोड़ों के विषय में बिवाद हुआ, कद्रु कहती थी कि सूर्य्य के रथ में जो घोड़े जुते हैं वह काले हैं, और गरुड की माता उनको सफेद बतलाती थी, सर्प अपनी माता को सच्ची सिद्ध करने के वास्ते सूर्य्य के घोड़ों के शरीर में जा लिपटे, इस से वह घोड़े काले मालूम होने लगे, जब

विनता शपथ के अनुसार कद्रु की दासी हो गई, तब दासी भाव के सब कार्य्य करने लगी, एकदिन गरुड़ ने अपनी माता से पूछा कि तुम इसके घर दासी का काम क्यों किया करती हो? गरुड़ की माता प्रथम की सब कथा कह सुनाई, गरुड़ ने उस कथा को सुनके पूछा कि कोई ऐसा कार्य्य है जिसके करने से तुम्हारा दासीपन छूट जाय? गरुड़ की माता ने अपनी सौतीन से पूछ के गरुड़ से कहा कि यदि तुम अमृत लाके सर्पों को पिलाओ तो मैं दासीपन से मुक्त हो जाऊं। इसबात को सुनके गरुड़जी अमृत लाने के वास्ते चले, मार्ग में अपने पिता के दर्शन की उनको इच्छा हुई, तब वह अपने पिता के पास गये, और दण्डवत् प्रणाम करके उनसे कहा कि पितः! मुझे क्षुधा बहुत सताया है, आप मुझे बताइये कि मैं क्या खाऊं? गरुड़ के पिता ने कहा कि एक द्वीप में शूद्रही बसते हैं, उन सबको खा जाओ, परन्तु ख़बरदार किसी ब्राह्मण को मत खाना, गरुड़ ने अपने पिता से पूछा कि मैं ब्राह्मण को क्योंकर पहिचानुंगा? उसके पिता ने कहा कि जो मनुष्य तेरे पेट में न गले उसीको तुम ब्राह्मण समझना। गरुड़ उस द्वीप में गये, और सम्पूर्ण द्वीपवासियों को चोंच में भर के निगलने लगे, उनमेंही एक ब्राह्मण भी था, वह गरुड़ के पेट में तो चला गया, परन्तु पेट में जब न गला तब पेट में थोड़ासा उछलने लगा, तब गरुड़ ने उससे पूछा कि तू कौन है जो मेरे पेट में नहीं गलता है? उसने पेट में सेही उत्तर दिया कि मैं ब्राह्मण हूं, गरुड़ने उससे कहा कि तुम फ़ौरन मेरे पेटसे निकल आवो! ब्राह्मण ने कहा कि मैंने जिस कहारिन को अपनी भार्य्या बनाके रखा था, उसको भी आप निकाल दीजिये तब मैं निकलूंगा, गरुड़ ने तथास्तु कहके दोनों को पेट से निकलने की आज्ञा दी, इस आज्ञा को पाते ही वह ब्राह्मण कहारिन के सहित पेटसे निकल आया। गरुड़ वहां से पेट भरके जब चले तब एक ऐसे वटवृक्ष पर बैठे कि जो कई योजन का था, गरुड़ के बैठने से उस वृक्ष की शाखा टूट पड़ी, और

इसही शाखा पर कई हज़ार बालखिल्या ऋषि तप करते थे, यदि गरुड़जी उस शाखा को छोड़ देते तो वह सब ऋषि दब के मर जाते, इसलिये गरुड़जी उस शाखा को अपने पंजों में दबा के उड़े, और बहुत दिन तक उड़तेही फिरा किये, फिर अपने पिता से पूछा कि इनको मैं कहां रखूं? कश्यप ऋषि ने कहा कि इनको अमूक पर्वत पर जाके रख दो। खैर उनको रख के गरुड़जी अमृत लेने को चले, जब स्वर्ग में पहुंचे तब अमृतकुण्ड के रखवालों से और गरुड़ से भयानक युद्ध हुआ, फिर उनके हार जाने पर समस्त इन्द्रादि देवता गरुड़ से लड़ने को आये, जब वह भी हार गये, तब मुझको सब ने बुलाया, और मैं भी गरुड़ से लड़ने लगा, जब लड़ते २ मैं भी थका तब गरुड़ ने प्रसन्न होके कहा कि हे विष्णो! मैं तुमसे बड़ा प्रसन्न हुआ मुझसे ईप्सित वर मांगो, मैंने गरुड़ से यही वर मांगा कि तुम मेरे वाहन बनो। (इत्यादि) देखिये देववृन्द! कैसी असम्भव कथा है, क्या हमलोग छल से किसी को अपने वश में करते हैं? जबकि मुझे पुराणवाले सर्व्वशक्तिमान् मानते हैं, तो फिर ऐसे ऐसे ढकोसलों से मुझे शक्तिहीन क्यों सिद्ध करते हैं? मेरे अवतारों में से जिस कृष्ण को पूर्णावतार मानते हैं, उसके विषय में जो जो असम्भव और अश्लील कथा लिखी है, उनका आपलोगों के सम्मुख वर्णन करना केवल समय को नष्ट करना मात्र है, तौभी दो अपूर्व कथाओं को मैं अवश्य यहां वर्णन करूंगा। आपलोगों ने सुना होगा कि कृष्ण के बड़े भाई बलराम से रेवती का विवाह हुआ था, यह रेवती महाराज रैवत की कन्या थी, उस कन्या को अत्यन्त रूपवती और गुणवती देख के उसके समान वर की जिज्ञासा करने को महाराज रैवत अपनी कन्या के सहित ब्रह्मा के पास ब्रह्मलोक में गये, ब्रह्मा के सामने उस समय एक और मामला पेश था, इसकारण राजा रैवत वहां बैठ गए, और ब्रह्मा से बिनय करने को अवसर की प्रतीक्षा करने लगे, जब अवसर मिला तब राजा ने

ब्रह्माजी से सुयोग्य वर की जिज्ञासा की, ब्रह्माजी ने इंस के उत्तर दिया कि राजन्! जितनी देर तक तुम यहां बैठे रहे उतनी देर में मर्त्यलोक में अनेक युग बीत गये, इसकारण तुम्हारे वंश मे अब कोई भो नहीं रहा है, अब तुम शीघ्र चले जाओ, और इस कन्या का यदुवंशीय बलराम से विवाह कर दो, ब्रह्मा की आज्ञा ले राजा रैवत मर्त्यलोक में आये, और बलराम से रेवती का विवाह कर दिया। क्यों महाशय! रेवती का शरीर क्या पार्थिव परमाणुओं का नहीं था, जो उसको मृत्यु ने न घेरा? यदि यही बात थी तो अबतक क्यों न जीवित रही? यदि यही कहिये कि ब्रह्मलोक में चले जाने से मृत्यु न हुई, तो बिना शरीर त्याग किये ब्रह्मलोक में जानाही क्योंकर सम्भव है? सत्य तो यह है कि लालबुझक्कड़ों ने दूसरी कथा मुचकुन्द का भी ऐसेही रची है, कि राजा मुचकुन्द देवतों को दैत्यों से बचाने के निमित्त स्वर्ग में गये, परन्तु यहां उनका कुल क्षय हो गया। यदि यह दोनों कथा सत्य होती तो महाराजा दुष्यन्त जब इन्द्र को सहायता देने स्वर्ग में आये थे, तब मर्त्यलोक में उनकी स्त्री शकुन्तला और उनका पुत्र भरत क्योंकर जीता था, क्या उनके वास्ते मृत्यु का दूसरा नियम था, और महाराजा रैवत तथा मुचकुन्द के वास्ते दूसरा नियम था?

देववृन्द! इन कथाओं सेही सिद्ध होता है कि मेरे अवतारों के विषय में भो सब मिथ्या कथा लिखी है। अवतार लेने के जो कारण पुराणवालों ने लिखे हैं, वह भी हास्यप्रदही है, भला सोचिये तो कि जरा से बल वाले कंस को मारने के वास्ते यदि मुझे स्वयम् अवतार लेने की ज़रूरत होता तो जिस जगत् में कंस सरीखे करोड़ों बलवान भरे हैं, उसकी प्रलय करने के वास्ते तो मुझ में शक्तिही सिद्ध न होगी, फिर अवतारों का भी ठिकाना नहीं है कि कितने हुए, क्योंकि गोकुलिय गोसाईं सब अपने को विष्णु का अवतारही समझते हैं, एक और भी आश्चर्य की बात है कि श्रीमद्भागवत में कथा

को अनेक स्थलों में सर्वज्ञ लिखा है, और यह भी लिखा है कि कृष्ण ने अपने गुरु सन्दीपन के मरे हुये पूर्वों को ला दिया था, परन्तु जब उनके पोते अनिरुद्ध को बाणासुर ने अपने घर में कैद कर लिया था, तब उनको यह भी न मालूम हुआ कि मेरा पोता कहां चला गया। जब नारद ऋषि ने जाके उनको सब गुप्त हाल सुनाया, तब उनको मालूम भया कि अनिरुद्ध को बाणासुर की कन्या ने चित्र रेखा के द्वारा मंगा लिया है। न मालूम उस समय कृष्ण की सर्व्वशक्तिमत्ता और सर्व्वज्ञता कहां को उड़ गई थी? हां एक बात और भी कहना मैं भूल गया, कि जब बालक अवस्था में यशोदा ने कृष्ण को मट्टी खाने के अपराध में बांधा था, उस समय कृष्ण ने अपने मुख में तीनों लोक दिखा दिये थे, भला कहिये तो मुख था, या दुनिया का नक्शा था? परन्तु जब दुर्य्योधन ने कृष्ण को कैद करने का प्रबन्ध किया, उस समय सब भिटीपटाग भूल गई, यदि कृष्ण वास्तव में मेरा अवतार वा सर्वज्ञ होते, तो अपने प्यारे भानजे अभिमन्यु को यमराज के घर से क्यों न लौटा लाते? असल में न कृष्ण मेरे अवतार थे और न सर्व्वज्ञ थे।

जिन प्रह्लाद को विष्णु का परम भक्त लिखा है, और जिनको नृसिंह की कृपा से परम विज्ञान प्राप्त होना एवम् मोह से रहित होना भागवतादि पुराणों में लिखा है, उनका बदरिकाश्रम में रहने वाले उन नारायण के साथ (देवी भागवत में) घोर युद्ध लिखा है, जिन को पुराण वाले विष्णु का अवतार मानते हैं, (भागवत स्कं० १ अ०-तुर्य्ये धर्मकलासर्गे नरनारायणावृषीभूत्वात्मशमोपेतमकरोद्दुश्चरन्तपः) कहिये तो वह प्रह्लाद की नारायण भक्ति कहां को चली गई? फिर जिन नृसिंहजी की सब से अधिक प्रशंसा और शक्ति लिखी है, उनके ही विषय में पुराणों के दादा गुरु आकाश भैरव तंत्र में लिखा है, कि जब नृसिंहजी का क्रोध किसी प्रकार से शान्त न हुआ, तब देवतों ने शिव महाराज से जाके प्रार्थना की, शिव जी भी देवतों

को अभय दान देके उनके क्रोध को शान्त करने का उपाय सोचने लगे, जब कोई और उपाय न सूझा, तब शिवजी ने शरभ शालभ पक्षीराज का रूप धारण किया, और नृसिंहजी को पंजों में दबाके उड़ गये अनेक बर्षों तक शिव महाराज नृसिंह को पंजों में दबाये आकाश में फिरा किया, जब नृसिंहजी थके, और घबड़ाये तब शिव की स्तुति की, यही स्तुति दारुण संज्ञक नाम से प्रसिद्ध है, इन शरभजी के रूप को आपलोग सुनेंगे तो और भी चकित होंगे, इनका रूप यों बर्णन किया गया है।—

चन्द्रार्काग्निस्त्रिदृष्टिः कुलिशनखश्चंचलात्युग्रजिह्वः।
काली दुर्गा च पक्षौ हृदयजठरगौ भैरवोवाडवाग्निः॥
ऊरुस्थौव्याधिमृत्यू शरभवरखगश्चण्डवातातिवेगः।
संहर्त्तासर्वशत्रून् जयतिसशरभः शालवः पक्षिराजः॥

अब कहिये क्या यह अवतारों के बनाने से मुझे गाली देना नहीं है? फिर बावन के नाम से मुझे धोखे बाज़ और जाल साज़ बनाया है, क्या मुझे पुराण वालों ने पक्षिय वा पक्षपाती समझ रक्खा है, कि मैं इन्द्र के वास्ते पहिले छोटा सा रूप बनाके भिक्षा मांगने जाता और फिर बिकट रूप बनता और बिचारे निरपराध बलि को छल के कैद कर देता, क्या मैं अन्यायी हूं? कि निरपराध को दण्ड देता हूं, फिर पुराणवाले यह भी कहते हैं, कि बावन सदा बलि के द्वार पर पहरा दिया करते हैं, यह सम्भव है कि ईश्वर किसी का पहरेदार हो सक्ता है? खैर एक और भी बात मुझे याद आई है, जब कृष्ण महाराज से शाल्व लड़ने को द्वारिका में गया था, तब कृष्ण बलराम को द्वारिका की रक्षा के वास्ते घर पर छोड़ के आप शाल्व से लड़ने को आये, तब घोर घमसान मच गया, कृष्ण को छलने के वास्ते शाल्व ने माया से वसुदेव का सिर बनाया, और कृष्ण को दिखला के कहने लगा कि ले मैं तेरे पिता का सिर काट लाया, उस समय सिर को देख के कृष्ण महाराज के होश

हवास गुम हो गये, और रथ में मुख मोड़ के रोने लगी, बहुत देर के बाद जब ध्यान आया कि मैं बलराम को रक्षा के वास्ते छोड़ आया था, और बलराम ऐसे साधारण वीर नहीं हैं, जिनको शाल्व क्षणमात्र में जीत लेता, इससे निश्चय होता है कि यह दानवी माया है; देखिये तो कृष्ण की सर्वज्ञता को कैसा साफ़ उड़ा दिया है। यह तो भागवत की बात हुई, अब भागवत का हाल सुनिये, इसमें लिखा है कि जब रुक्मिणी के गर्भ से प्रद्युम्न की उत्पत्ति हुई, तबही सूतिका गृह से प्रद्युम्न को कोई उठा ले गया, श्रीकृष्ण पुत्र के विरह से अत्यन्त दुःखी हुए, और कई दिन तक रोते फिरा किये; परन्तु बालक का कुछ पता न मिला, तब नारद ने आके कृष्ण को समझाया कि सम्बर दैत्य तुम्हारे पुत्र को उठा ले गया है, तुम कुछ मत घबड़ाओ, वह स्त्री के सहित तुम से आके मिलेगा। ख़ैर अन्त में ऐसाही हुआ कि प्रद्युम्न सम्बर दैत्य को मारके अपनी स्त्री रति के सहित कई वर्ष के पश्चात् कृष्ण के पास आया, पुराण बनानेवाले से कोई पूछे कि जो कृष्ण अपने गुरु पुत्रों को लाने के समय सर्वज्ञ बने थे, और मरे हुए गुरु पुत्रों को यमराज के पास लेने को गये थे, वह इतना भी न जान सके कि मेरे पुत्र को कौन ले गया, और न उसको छुड़ाके लाये। कहांतक कहूं अवतारों के विषय खूबही लीला रची है, इसके अतिरिक्त मुझे भी खूबही कलङ्क लगाये हैं, जय विजय के विषय में जो कथा लिखी है, वह भी हंसी से भरी हुई है। देवगण! यह क्या हंसी की बात नहीं है कि जो स्वयम् मुक्तिदाता है उसकेही पार्षदों को राक्षस बना दिया। फिर—

"आप गलन्ते पाण्डिया यजमान भी गाले।"

इस कहावत के अनुसार जय, विजय के कारण मुझे भी मछली और कछुआ बनना पड़ा, फिर हर बार मैं उनको मुक्ति देता रहा, पर वह बराबर जन्म लेतेही रहे। महाशय! मैं कहांतक कहूं, या तो आपलोग पुराणों को खारिज़ कीजिये, नहीं तो मैं ईश्वरपन से

इस्तीफ़ा देता हूं, बिष्णु महाराज को और भी बहुत कुछ कहना था परन्तु एकही व्याख्यान में कई दिन व्यतीत हो जाने के भय से उनका व्याख्यान रोक दिया गया।

बिष्णु भगवान के बैठतेही सूर्य्यनारायण खड़े हुये और कहने लगे :—

देववृन्द! मुझे आपलोग भलीभांती जानते हैं, कि मैं सृष्टिकर्त्ता ईश्वर की उस महिमा को प्रकाशित करने वाला हूं, जिस से उस की अपूर्व कारीगरी और असीम विज्ञान का प्रमाणमात्र को परिचय मिलता है। सृष्टि के आरम्भ में ही परमेश्वर ने मुझे इस अभिप्राय से निर्माण किया था, कि मेरे आकर्षण से अनेक लोक अपनी सीमा पर स्थीर रहैं, परन्तु पुराण वलों ने मेरी उत्पत्ति अद्भुत प्रकार से लिखी है। लिखा है कि कश्यप की स्त्री आदिति के गर्भ से मेरी उत्पत्ति हुई, भला कहिये तो कि यदि मैं किसी स्त्री के गर्भ से उत्पन्न होता तो मेरे जन्म से पूर्व के मनुष्य अर्थात् मेरे माता पिताही क्योंकर देखते, क्या वह लोग अन्धे थे? इसही प्रसङ्ग में मैं यह भी कहे देता हूं, कि पुराण वालों ने मेरे मित्र बायुदेव को भी ऐसीही दोष लगाया है, लिखा है कि जब बायु अपनी माता के गर्भ में थे, तब इन्द्र उसकी माता के गर्भ में घुस गये, और बालक को ४९ टुकड़े कर डाले; जब बायु की माता को चेत हुआ, तब उसने इन्द्र को शाप दिया, क्या यह असम्भव और अश्लील बात नहीं है, कि देवराज इन्द्र अपनी बिमाता (Step mother) के गर्भ में चले गये? खैर मेरे विषय में जो पुराण वालों ने लिखा है, वह बिल्कुल असत्य है, लिखा है कि दुर्वासा ऋषि से कुन्ती ने मंत्र लेके मुझे मंत्र बल से अपने पास बुलाया, वह कन्या थी मैंने उससे व्यभिचार की इच्छा प्रकट की जब वह सहमत न हुई तब मैंने उसे वर देके प्रसन्न किया, कहा कि तेरा कन्यापन नष्ट न होगा और तेरा पुत्र मेरेही समान तेजस्वी होगा, कुन्ती इसबात को

सुनके राजी हुई, और मैं जनाबिलजब्र के कसूर से बरी हुआ, मगर (Rape case) कन्यात्व नष्ट का दोष तो मेरे ऊपर लगही गया खैर कुन्ती के गर्भस्थापन करके मैं फिर आकाश में जा चमका, और १० मास के पश्चात् कुन्ती के पुत्र उत्पन्न हुआ, इस पुत्र की उत्पत्ति भी विलक्षणही लिखी है, कि कुन्ती के कान से वह लड़का पैदा हुआ। वाह जी वाह ! क्याही कथा गढ़ी गई है, (मैं ठीक कहता हूं कि यह कथा लालबुझक्कड़ की इस कहानी के अनुसार है कि एकबार लालबुझक्कड के ग्राम में कोई सौदागर हाथी ले आया उसको देख के ग्रामवासी चकित हुए और लालबुझक्कड से पूछने लगे कि बतलाओ यह क्या है ? लालबुझक्कड़ ने उत्तर दिया कि "लालबुझक्कड़ बूझियां और न बूझै कोय। रात इकट्ठी हो गई या दिल्ली वाला होय ॥" बस इसही प्रकार से राधा पुत्र का कर्ण नाम सुनकेही कान से पैदा होने की कहानी गढ़ी गई है) भला कान से भी कहीं पुत्र उत्पन्न होते सुने हैं ? फिर तारीफ़ यह है कि लोहे का जिरह बखतर पहिनेही उसका जन्म होना लिखा है क्या कोई वैद्य किसी विद्या से सिद्ध कर सक्ता है कि माता के पेट में लोहे का जिरह बखतर बन जाय ? आपलोग खूब समझ सक्ते हैं कि राधेय कर्ण को क्षत्रिय बनाने के वास्ते जो यह कथा गढ़ी गई इसमें मुझे और पाण्डवों की माता कुन्ती को बड़ा भारी दोष लगाया गया है। फिर छाया को मेरी स्त्री लिखा है, नृसिंहपुराण की १८ अध्याय में मेरे वंश की अद्भुत कथा लिखी है, लिखा है कि त्वष्टा की कन्या संज्ञा से मेरा विवाह हुआ। जब वह मेरे तेज को न सह सकी तब अपने पिता के पास गई, उसके पिता ने यह कह के फिर मेरे पास उसे भेजा कि मैं सूर्य्य के पास आके सूर्य्य के तेज को कम कर दूंगा, तब फिर वह मेरे पास आई और रहने लगी। उसके गर्भ से मेरे तीन सन्तान हुईं, वैवस्वत मनु, यम और यमी नाम की एक कन्या, इसके पश्चात् संज्ञा मेरे तेज को न सह सकी

तब आप तो घोड़ी बनके उत्तर कुरु देश को चली गई, और अपनी छाया को मेरी स्त्री बना के मेरे घर छोड़ गई, तब मुझे इतना भी ज्ञान न रहा कि यह मेरी असल स्त्री नहीं है, तब उस छाया से मेरे तीन सन्तान फिर हुईं, मनु, शनैश्चर और तापती नाम की कन्या। छाया अपनी सन्तान से अधिक प्यार करती थी, और संज्ञा की सन्तान से कम प्रेम रखती थी। इसकारण यम और यमी ने मुझसे कहा तब मैंने छाया को समझाया, पर छाया ने क्रोध करके यम को शाप दिया कि तू प्रेतों का राजा हो, और यमी को शाप दिया कि तू नदी हो जा, तब मैंने भी छाया की सन्तान को शाप दिया कि शनैश्चर तू क्रूर ग्रह हो जा, और तापती तू भी नदी हो जा, तब मैंने ध्यान करके देखा तो मालूम हुआ कि संज्ञा घोड़ी का रूप धारण किये उत्तर कुरु देश में विचरती है तब मैं भी घोड़ा बन के भागा और उससे दो पुत्र उत्पन्न किये, वही आपलोगों के डाक्टर अश्विनि कुमार हैं। भला कहिये तो मुझे कैसा घोड़ा बनाया है, कोई पुराण बनाने वाले पोप से पूंछे कि जब मैं घोड़ा बनके कई वर्ष तक उत्तर कुरु देश में रहा था, तब जगत् में प्रकाश कौन करता था? देववृन्द! मैं आपलोगों से प्रार्थना करता हूं कि इन देवकुल कलङ्कारी पुराण पुस्तकों को इतिहासों की लिष्ट (सूचिपत्र) से अवश्य काट दीजिये।

सूर्य्यनारायण के वचन की ताईद महर्षि अगस्त ने की; और कहा कि पुराणों का नाम आज से पंच (दिल्लगी के अखबार) रक्खा जाय, क्योंकि इनमें ऐसीही हंसी की बातें लिखी हैं, मेरे विषय में लिखा है कि अगस्त का जन्म घड़े से हुआ और फिर लिखा है कि मैं समुद्र को पी गया, भला जो खुद घड़े से पैदा हो वह समुद्र को क्योंकर पी सक्ता है? क्या घड़े में समुद्र समा सक्ता है? अब मेरे चरित्रों को सुनिये कि दक्षिण पथ में आतापि और वातापि नाम के दो दैत्य रहते थे, वह सदैव छल से ब्राह्मणों को निमंत्रित

करके बुलाते थे, और उन दैत्यों में से एक बकरा बन जाता था, और दूसरा उसे मार के ब्राह्मण को खिला देता था। एक दिन मेरा भी उन्हों ने निमंत्रण किया, पर यहां तो ठहरे गुरु घण्टाल उसे खा के पचा गये, फिर वह भी मारा गया, इसके अनन्तर मैंने समुद्र को पिया और मूत्र के मार्ग से निकाल दिया गोया व मेरे इन्द्रिय जुलाब था, फिर विन्ध्याचल पर्वत सूर्य्य को रोकने के वास्ते ऊंचा होता जाता था, तब देवतों ने मुझ से प्रार्थना की, मैं पर्वत के पास गया, वह प्रणाम करने को पृथिवी में गिरा, मैंने उसके सिर पर हाथ रख के कहा, कि जबतक मैं तीर्थयात्रा करके न लौटूं तबतक तुम ऐसेही पड़े रहो, बस मैं तो आके तारा बन गया और विन्ध्याचल अबतक वैसेही पड़ा है। इस कथा से तो प्रथम तो मुझे धोखेबाज़ सिद्ध किया, फिर सृष्टिक्रम विरुद्ध जड़ का चैतन्य के समान प्रणाम करना और मेरे बचन को मानना आदि असम्भव बातें सिद्ध की है; क्या हम महर्षि होके भी मांस भक्षण करते? समुद्र का खारहो ने पुराणों से जो प्राचीन पुस्तक हैं उनमें बराबर लिखा हुआ है, परन्तु उसको भी मेरा मूत्र लिख दिया; इन कथाओं से हमलोगों को बड़े दोष लगते हैं, इसकारण इनको ज़रूरही मन्सूख कर देना चाहिये।

इसके अनन्तर सांख्य शास्त्र के प्रणेता महर्षि कपिल खड़े हुए, और कहने लगे कि मैंने जो सांख्य शास्त्र बनाया है, उसका बिना विचारे और पढ़ेही भागवत में मेरे मत को प्रकाशित किया है, इसकारण मैं भागवत बनाने वाले परम दाखलत बेजा का जुर्म क़ायम करके नालिश करने वाला था। परन्तु अब आपलोगों ने पंचायत करके भागवत को रद्दी करने का प्रस्ताव किया है, इसकारण मैं आपलोगों को धन्यवाद देता हूं, पुराण वालों ने मुझे भी चोरी का रक्षक लिख दिया हैं। उन्हो ने लिखा है कि जहां मैं तपश्चर्य्या करता था, वही राजा इन्द्र राजा सगर के अश्वमेधार्थ छोड़े घोड़े

को चुरा के बांध गया मैं समाधिस्थ था, इसकारण मुझे कुछ खबर न पड़ी, जब राजा सगर के ६०००० पुत्र घोड़े को सब जगह ढूंढ़ के हार गये, तब उन्हो ने पृथ्वी के नीचे ढूंढ़ने के अभिप्राय से पृथ्वी को खोदना आरम्भ किया, उन्हो के खोदने से सात समुद्र बन गये, (और जब गंगाजी आई तब उनमें पानी भरा) पृथ्वी को खोदते खोदते उनको मेरा आश्रम मिल गया, तब उन्हो ने मुझे पीड़ा दी उस पीड़ा से मेरी समाधि खुल गई, ज्योंही मैंने नज़र उठा के देखा, त्योंही वह सब भस्म हो गये। भला कहिये क्या मैं ऐसा हत्यारा हूं कि ६०००० मनुष्यों को मार डालता, हमलोग ऋषि क्या हुये, मलकुलमौत हो गये, फिर राजा प्रियव्रत के रथ की कथा इस से भी विलक्षण लिखी हैं, अर्थात् सूर्य की स्पर्द्धा से जगत् में बराबर चान्दना रखने के वास्ते जो सात दिन स्वयम् रथ पर चढ़के घूमे थे, उनके प्रकाश से सात दिन तक जगत् भर में चांदना रहा था, और उनके रथ के एकही पहिये की लीक से सात समुद्र बन गये, इनही राजा प्रियव्रत को ११ अरब वर्ष तक राज्य करते लिखा है। सभ्यगण! कहिये किसको सच्चा माना जाय, अर्थात् राजा सगर के पुत्रों के खोदने से समुद्र बने, वा राजा प्रियव्रत के पहिये से समुद्र बने हम तो इन दोनोंहो कथाओं को मिथ्या समझते हैं, क्योंकि वेदों में लिखा है कि सृष्टि के आरम्भ मेंही ईश्वर ने समुद्र को बनाया।

महर्षि कपिल के व्याख्यान का अनुमोदन करने को महर्षि वशिष्ट दण्डायमान हुए, और यों कहना आरम्भ किया। सभ्यवृन्द और सभापते! पुराणों के विषय में मैं कहां तक कहूं, वह तो असम्भव और प्रमाण शून्य कहानियों का भण्डार है, महर्षि विश्वामित्र और मेरे विरोध के कारण में लिखा है कि एक बार विश्वामित्रजी (जब राजा थे) वन में शिकार खेलने को आये, मैं ने उनका धर्मज्ञ राजा समझ के अपने आश्रम पर निमंत्रित किया, उन्हो ने मेरे आश्रम

पर खान पान की कुछ भी सामग्री न देखी तब बड़ा आश्चर्य करने लगे, मैंने उनका अभिप्राय समझ करके उनको कहा। [illegible] और कामधेनु के [illegible] सुरभी गौ से कहा कि तुम [illegible] इस वचन को सुन के सुरभी ने हुंकार किया, [illegible] हुंकार से ही सहस्रों दास और दासी उत्पन्न हो गये [illegible] प्रकार के भक्ष्य भोज्य और चोष्य तथा लेह्य पदार्थ उत्पन्न हो गये और दास दासियों ने सब पात्र [illegible] इस अद्भुत बात को देख कर [illegible] विश्वामित्र [illegible] सुरभी [illegible] महर्षे यह गौ [illegible] तुम [illegible] क्या करोगे? मैंने कहा, राजन्! [illegible] इस [illegible] को और [illegible] पर भी विश्वामित्र न माने और अपना [illegible]; तब मैंने कहा कि तुम जबरदस्ती [illegible] हो तो मेरी यज्ञ धेनु को ले जाओ, विश्वामित्र ने अपने [illegible] आज्ञा दी कि वसिष्ठ की धेनु को खोल लो जब विश्वामित्र के सेवक मेरी गौ को खोलने लगे तब धेनु ने मुझ से कातर स्वर से पूछा कि महर्षे मेरा क्या अपराध है जो आप मुझे परित्याग करते हैं? मैंने कहा सुरभि! मैं तुझे परित्याग नहीं करता हूं, बरन् विश्वामित्र जबरदस्ती तुझे [illegible] लिये जाता है, यदि तू अपनी रक्षा आप कर सको तो करो। इस वचन को सुनके धेनु ने हुंकार किया. और उसके क्रोध करते ही उसके खुरों से खुरासानी राक्षस तथा और २ प्रकार के सहस्रों राक्षस उत्पन्न हो गये, और विश्वामित्र की सेना से युद्ध करने लगे, उन राक्षसों ने क्षणमात्र में विश्वामित्र की सेना को विध्वंस कर दिया, जब विश्वामित्र की सब सेना मारी गई और वि॰ मि॰ एकले खड़े रह गये, तब उनको क्षात्र बल पर अविश्वास और घृणा उत्पन्न हुई और वह उसही समय राज्य छोड़ तप करने वन को चले गए। आपलोग विचारिये कि वह गौ थी, वा [illegible]

हुंकार से हो सहस्रों दैत्य पैदा हो गए, यदि यही बात है तो इन्द्र ने क्यों नहीं अपने घर में एक वैसी गौ पाली जिस्से कोई भी दैत्य दानव स्वर्ग पर चढ़ाई न कर सके ? खैर एक और अद्भुत कथा सुनिये मेरे यजमानों के साथ मेरी लड़ाई का कैसा बयान पुराणों में लिखा (देवीभा० स्कन्ध ६ अ० १५) राजा इक्ष्वाकु के १२ वें पुत्र राजा निमि ने एकवार मुझे यज्ञ करने को बुलाया, राजा निमि का वह यज्ञ ५००० वर्ष में पूर्ण होने वाला था, परन्तु इस यज्ञ से पहिले मुझे देवराज इन्द्र ने यज्ञ करने को निमन्त्रित किया था, इसकारण मैंने राजा निमि से कहा कि प्रथम मैं इन्द्र को यज्ञ कराय आऊं, पश्चात् तुम्हारी यज्ञ कराऊंगा अभी तुम यज्ञ मत करो, राजा निमि ने कहा कि मैं सब ऋषियों को बुला चुका हूं, और सब सामग्री भी इकट्ठी कर चुका हूं अब यज्ञ को नहीं रोक सक्ता हूं आप हमारे वंश के पुरोहित हैं, इसकारण हमें छोड के धन के लोभ से इन्द्र के यहां तुमको जाना उचित नहीं है। परन्तु मैंने राजा निमि का कहना न माना और मैं इन्द्र के यहां यज्ञ कराने चला गया, तब राजा निमि ने महर्षि गौतम को पुरोहित बना के यज्ञ कर लिया, जब मैं इन्द्र को यज्ञ को समाप्त करके ५००० वर्ष के पश्चात् राजा निमि के घर लौट के गया, तब देखा कि राजा शयन करते हैं, राजा के सेवकों ने राजा को न उठाया, तब मुझे ऐसा क्रोध आया कि मैंने राजा को शाप दिया कि तेरा शरीर नष्ट हो जाय, जब मैंने शाप दिया तब राजा के सेवकों ने राजा को जगाया, वह जाग के मेरे पास आया और कहने लगा, कि हे महर्षे ! तुम ने अकारण मुझे शाप दिया और प्रथम लोभ वश मुझ यजमान को यज्ञ को छोड़ के इन्द्र के घर चले गये थे, यदि जागता होता और तुम्हारे पास न आता तब अवश्य अपराधी होता, परन्तु तुम ने मुझ निद्राग्रस्त को शाप दिया इसकारण तुम्हारा अविवेक पूर्ण और क्रोधी शरीर भी नष्ट हो जाय। राजा के शाप को सुनके मैं ब्रह्मा के पास गया और उनसे

सब वृत्तान्त सुनाया, ब्रह्मा ने कहा तुम्हारा दूसरा जन्म मित्रा वरुण के यहां होगा और तुम्हारा विज्ञान विनष्ट न होगा, खैर मेरा दूसरा जन्म हुआ और फिर घड़े से मेरी उत्पत्ति हुई। अब राजा निमि का हाल सुनिये, उसका भी शरीर नष्ट हुआ, परन्तु ब्रह्मा के वर से उसका वास समस्त मनुष्यों के नेत्रों पर हो गया; देखिये तो क्या दिल्लगी की कथा है, कि राजा का निवास सब मनुष्यों के नेत्रों पर हो गया, क्या उससे पूर्व मनुष्यों का पलक (निमेष) नहीं लगती थीं? यदि यही बात है तो महर्षि गोतम ने जो जीव के साधारण लक्षण लिखे हैं वह क्या मिथ्या है? महर्षि वशिष्ठजीकी बात को सुनके सभापति जी ने अपने आसन से उठके कहा कि अभीतक किसी वस्तु के अधिष्ठातृ देवता ने अपनी सम्मति प्रकाशित नहीं की है, जिससे उस गरोह की राय भी ज़ाहिर हो; लिहाज़ा अब किसी गरोह के देवता को अपनी सम्मति प्रकाशित करनी चाहिये। श्रीमान सभापतिजी की आज्ञा को सुनके सब नदियों के अधिपति श्रीमान् समुद्र देव खड़े हुए और कहने लगे कि—

सभ्यवृन्द! पुराणवालों ने जो मेरी दुर्दशा की है वह अकथनीय है, आपलोगों ने मेरे मथने की कहानी को अवश्य सुना होगा? देखिए तो कैसा वाहियात झगड़ा मचाया है, कि मेरे मथने के वास्ते मेरु पर्वत को उठा के देवता ने मेरे बीच में डाल दिया, फिर सर्पराज वासुकी को नेती (रस्सी) बनाके घरांटेके साथ घुमाया, उस घुमाने में भी विष्णु ने चलाकी की, कि दैत्यों को सर्पराज मुख की ओर खड़ा किया, और देवता को पूंछ की ओर खड़ा किया, जिससे सर्प का विष दैत्यों कोही चढ़े और देवता उससे बचे रहें; खैर यह भी चालाकी चमत्कारिणी और हितकारिणी न हुई, और न सर्प काटा। तब जो २ चीज़ अच्छी २ निकलीं वह देवतों को मिलती गईं, और बुरी २ चीज़ विचारे दैत्यों को दी, उच्चश्रवा घोड़ा तो खुद देवराज ने हथियाया, लक्ष्मी विष्णु को पसन्द हुई और मेरे विचारे भोलानाथ

का विष पीना पड़ा, फिर जब मदिरा निकली तब तो वह दिल्लगी हुई कि भाड़ों को भी मात कर दिया। दैत्यों को छलने के वास्ते स्वयम् विष्णु भगवान् को मोहनी रूप धारण करना पड़ा, उस रूप को देख के हमारे भोलानाथजी ऐसे बहके कि विष्णु की भी लङ्गड़ी भूल गई, उनको पिण्ड छुड़ाना कठिन होगया; खैर विष्णुने उसही मोहिनी रूप से दैत्यों को छल के देवतों को अमृत पिलाया, भला सोचिये तो खारी पानी में अमृत कहां से आया सो भी अगस्त ऋषि के मूत्र में। देववृन्द! क्या पुराणवालों ने आपलोगों को यह गाली नहीं दी है, कि अगस्त ऋषि के पेशाब से मेरी उत्पत्ति लिखी और उससे उत्पन्न हुए अमृत को आपलोगों को पान कराया, फिर यहभी विचारने की बात है, कि मुझमें क्या किसी ने गुड़ या महुआ धान रखे थे जो मुझमें से शराब निकल आई? इसके सिवाय जिन धन्वन्तरी के पिता दीर्घतमा थे और जो काशी के राजकुल में पैदा हुए थे, उन धन्वन्तरी की भी उत्पत्ति मेरे जल में से हुई बतलाते हैं क्या धन्वन्तरी कछुए या मछरी थे, जो पानी से उत्पन्न होते? फिर सुश्रुत में धन्वन्तरी ने स्वयम् कहा है, कि—

"अहं हि धन्वन्तरिरादिदेवो जरारुजामृत्युहरोऽमराणाम्।
शल्याङ्गमङ्गैरपरैरुपेतम् प्राप्तोऽस्मि गाम्भूय इहोपदेष्टुम्॥"

नहीं मालूम धन्वन्तरी ने यह शेखी क्यों बघारी है? यदि मेरे मथने से धन्वन्तरी की उत्पत्ति होती तो वह अपने मुँह से आदिदेव क्यों बनते? क्या अपने मुँह से मिट्ठू बनना सभ्यता से बाहर नहीं है?

महाशय! जिन नदियों को मुझे पति लिखा है उनकी कथा सुनिये, दे॰ भा॰ में लिखा है कि एक दिन ब्रह्मा के दर्बार में गङ्गा जी खड़ी थीं, इन्द्र भी दर्बार में हाजिरी देने को उसही समय पहुँच गये; इनके अलावे और और देवता भी दर्बार में हाजिर थे, इत्तफ़ाक़ से वायु से गङ्गा के शरीर का वस्त्र उड़ गया। इससे सब देवतों ने नीची नज़र कर ली, परन्तु देवराज तिरछी आंखकर देखते रहे और

गङ्गाजी भी मुस्कुराईं, इस धृष्टता (बेअदबी) को देख कर ब्रह्मा ने दोनों को शाप दिया, कि तुम मनुष्य योनी में जन्म लो इसही बह्मा की भूल भुलैया में पुराणवालों ने एक और भी कथा जोड़ दी है। जब गङ्गाजी शाप पाके ब्रह्मा के दर्बार से लौटी आती थीं, तब उन्हों ने देखा कि आठों बसु रास्ते में बैठे रो रहे हैं. वह गङ्गाजी को देखकर और भी रोये, तब गङ्गाजी ने उनसे पूछा कि तुम लोग क्यों रोते हो? उन्होंने उत्तर दिया कि हम सबको वशिष्ठऋषि ने मनुष्य योनि में जन्म लेने का शाप दिया है। शाप का कारण पूछनेपर बसुओं ने कहा कि हमसब भी अपनी स्त्रियों को साथ लेके बन विहार (सैर) करते २ वशिष्ठजी के आश्रम पर पहुंचे वशिष्ठजी ने अपनी यज्ञ धेनु से सब पदार्थ लेके हमलोगों का आतिथ्य सत्कार किया, तब गौको इस अपूर्व शक्ति को देखकर हमसे से एक बसु की स्त्री ने अपने पति से कहा कि इस गौ को ले लेना चाहिए, स्त्री की अनुचित हठ से उस बसु ने गौ को चुरा लिया, परन्तु वह दिव्य गौ थी इसकारण बोल उठी. कि तुमसे वशिष्ठ महाराज क्रुद्ध हुए और हमलोगों से बोले कि तुम मनुष्यों के समान बुद्धि रखते हो, इसकारण तुमसब मनुष्य योनि में जन्म लो। महर्षि के इस शाप को सुनके हमलोगों ने बड़ा विनय की उससे वशिष्ठजी का जब क्रोध शान्त हुआ तब उन्हों ने कहा कि जिसने गौ चुराई है वह अधिक दिन तक मनुष्य रहेगा, और अन्य बसु जन्म लेतेही शाप से मुक्त हो जायेंगे; हे गंगे! इसही दुःख से हमलोग रो रहे हैं। गङ्गाजी ने यह सुनकर उन्हें संतोष दिया और अपने दुखड़े को सुनाया, तब यह सलाह ठहरी कि बसु गंगा के गर्भ से जन्म लें, खैर यही किया गया और देवराज इन्द्र राजा शान्तनु बने और गंगा उनकी पत्नि हुई, जब वह अपनी प्रतिज्ञानुसार सात पुत्रों को मार चुकीं, तब वही अठवां पुत्र भीष्म उत्पन्न हुए और पिता के बर से स्वाधीन मरण हो गये। यह तो गङ्गाजी की कथा हुई, यमुना और तापती की

हाल आपलोग सुनही चुके हैं, इनके अतिरिक्त और भी कईएक ऐसी नदी हैं, जिनकी पौराणिकों लालबुझक्कड़ों ने पहिले जन्म की मानुषी लिखी है और वह परस्पर के शापों से नदी हो गई हैं। परन्तु यह किसी पुराण में नहीं लिखा कि लण्डन की टेम्स नदी पहिले जन्म में कौन थी? हां एक बात तो मैं कहना भूलही गया, कि एक नदी एक राजा की राल से बनी है और वह राजा जिसको परम धर्मात्मा महाराज हरिश्चन्द्र का पिता लिखा है वह अभी तक आधे स्वर्ग में टंगा है और उसके मुख से राल गिर रही है, बस वही राल नदी होके बहती है, इस नदी का नाम कर्मनाशा, इसकारण है कि उसमें स्नान करने से वा उसका जल स्पर्श करने सेही मनुष्य के पूर्व कृत सब सुकर्म नष्ट होजाते हैं। क्या मैं आपलोगों से यह प्रश्न कर सक्ता हूं, कि उस नदी के आस पास निवास करनेवाले पाप पुंज नहीं बन गये होंगे? क्या उनलोगों के वास्ते ईश्वर दयालु और न्यायकारी नहीं रहा है? फिर आश्चर्य यह है कि उसही नदी के किनारे पर बसी हुई गया पुरी में पितरों का श्राद्ध करने से स्वर्ग का फाटक खुल जाता है; उसपर भी तुर्रा यह है कि जिन पितरों का गया में श्राद्ध हो जाता है उनकी मुक्ति हो जाती है, पर फिर भी उनका वार्षिक श्राद्ध होता रहता है। देववृन्द! मैं प्रकरण विरुद्ध श्राद्ध के विषय को कहने लगा था, अब मैं केवल यही कहके अपने व्याख्यान को समाप्त करूंगा, कि श्रीपौराणिक पोप राज ने अपने मन घड़त भूगोल में लिख दिया है कि शराब का, घीव का और ऊख के रस का भी समुद्र है, यदि यह बात सत्य होती तो सबलोग मज़े से घीव के घड़े समुद्र से क्यों न भर लाते और मद्य प्रिय अंग्रेज़ उस खुदाई शराब का व्यापार क्यों न करते? इसके अतिरिक्त यदि शराब का समुद्र होता तो मुर्झे मथ के शराब क्यों निकाली जाती? सभ्यवृन्द! मैं तो यही चाहता हूं कि जो पुस्तक मुग़ालते से भरे हुये हैं, उनको मान्य पुस्तकों की सूचि से अवश्य छांट देना चाहिये।

समुद्र का व्याख्यान हो जाने के अनन्तर भगवती (भूमि) उठीं और यों कहने लगीं, देववृन्द! आपलोग जानते हैं कि जिन परमाणुओं से मेरा संगठन हुआ है, वह परमाणु नित्य है और उनका संयोग ईश्वर ने सृष्टि के आरम्भ में किया है। परन्तु पुराणवालों ने मेरी पवित्रता को घटाने के निमित्त लिख दिया है कि मधु और कैटभ की चर्बी से पृथ्वी बनी है, भला विचारिये तो कि यदि मधु कैटभ से पहिले मैं न होती तो जिस जल पर विष्णु सोये थे वह किसके आधार पर ठहरता? फिर मेरे आधार के विषय में वह बहार की है, कि जिससे आपलोग अवश्य हंसेंगे, मेरा आधार शेष नाग को लिखा है, भला यह क्या दिल्लगी की बात है कि एक वह सर्प जो कद्रू के गर्भ से उत्पन्न हुआ वह मुझे क्योंकर धारण करता और उसके जन्म के पूर्व में कहां पर रखी थी? फिर उसका भी एक आधार लिख दिया है, परन्तु हजरतों को यह न मालूम हुआ कि हमसब लोग परस्पर के आकर्षण से ठहरे हुए हैं। फिर यह भी पुराणवालों को मालूम नहीं है कि जड पर्वतों के सन्तान क्योंकर होती, पर्वतों का विवाह पर्वतों की सन्तति और पर्वतों का निमंत्रणों में जाना न मालूम किस विज्ञान से सिद्ध करते हैं? पौराणिक महात्माओं ने लाख लाख योजन का एक एक वृक्ष लिख दिया है और द्वीपों का जो विस्तार लिखा है उसको पढ़तेही हंसी आती है। सभ्य महाशय! आज इतना समय नहीं है कि मैं अपनी पूरी सम्मति वा द्वीपादिकों की पूरी कथा को प्रकाशित करूं, किन्तु इतना अवश्य कहती हूं कि पुराणों ने मेरे विषय में सैकड़ों असम्भव बातें लिखी हैं, इसकारण पुराणों को अवश्य ख़ारिज़ कर देना चाहिये।

भगवती (भूमि) की वक्तृता को सुनके श्रीमान् सभापति जी ने सिंहासन से उठकर कहा कि सभ्यवृन्द! आपलोगों ने इस महती सभा में जितने व्याख्यान सुने मेरी सम्मति में उन सब का सारांश

यही है कि पुराणों के बनाने वालों ने आपलोगों पर सहस्रों मिथ्या दोष लगाये हैं अतएव आपलोगों की सम्मति है कि उन सब पुराणों को समुद्र में फेंक दिया जाय, यह भी सिद्ध हो गया है कि भगवान् विष्णु और शिव महाराज भी आपलोगों से सम्मत हैं, यद्यपि ब्रह्मा जी ने अभी तक अपनी सम्मति प्रकाशित नहीं की है तौभी वह आपलोगों से [illegible] पुरुष के साथ [illegible] क्या [illegible] भी पुराणों [illegible] [illegible] चोर भी [illegible] है, सुतराम् उनकी राय आपलोगों [illegible] है। मगर अभी तक बहुत से देवता और [illegible] अपनी सम्मति [illegible] नहीं की [illegible] उनकी [illegible] जल्दी है [illegible] यह भी [illegible] गया है, [illegible] देवता [illegible] व्याख्यान [illegible] का समय भी व्यतीत हो गया, इसकारण मेरी सम्मति [illegible] को [illegible] है और [illegible] इस विषय पर विचार [illegible]।

सभा [illegible] सम्मति को सुनकर श्री शङ्कराचार्य्य जी तथा राजा राममोहन राय आदि अद्वैतवादी धर्माचार्य्यों ने [illegible] [illegible] पालन के वास्ते सभा के [illegible] [illegible] नहीं है क्योंकि जिनलोगों को आत्मा का साक्षात्कार हुआ है, उन [illegible] ज्ञान वाले देवतों को [illegible] साधन स्वरूप उपासना की आवश्यकता नहीं है। इनके प्रस्ताव को यूरोप के अनेक लोगों के साथ श्रीमती मैडम ब्लावेटस्की ने अनुमोदन किया, परन्तु श्रीरामानुजाचार्य्य तथा परमपदारूढ महर्षि दयानन्द सरस्वतीजी महाराज के शिष्यों ने इस प्रस्ताव का बड़े बल से विरोध किया और महम्मद साहिब ने यूरोपीय लोगों को अपनी तेग दिखा के धमकाया कि "इस्तगफिरुल्ला आपलोग कैसे कहते खुदा हैं जो खुदा की